भारतीय संस्कृति में विश्व शांति और पर्यावरण सुरक्षा के सूत्र

संपादन :
हनुमान सिंह बर्डिया
एवं
डॉ. नारायण लाल कछारा

आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव ससंघ
तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते हुए
श्री अमृतलालजी जैन

भारतीय संस्कृति में विश्व शांति और पर्यावरण सुरक्षा के सूत्र

संपादन :

हनुमान सिंह वर्डिया

एवं

डॉ. नारायण लाल कछारा

आशीर्वाद :

आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

प्रकाशक :

धर्म दर्शन सेवा संस्थान

55, रवीन्द्र नगर, उदयपुर-313003

भारतीय संस्कृति में विश्व शांति और पर्यावरण सुरक्षा के सूत्र

संपादन :

हनुमान सिंह बर्डिया

एवं

डॉ. नारायण लाल कछारा

आशीर्वाद :

आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

प्रथम संस्करण :

1000 प्रतियाँ

फरवरी 2006

प्रकाशक :

धर्म दर्शन सेवा संस्थान

55, रवीन्द्र नगर, उदयपुर-313003

मूल्य :

20 रुपये

कम्पोजिंग एवं मुद्रण :

जैन प्रिन्टर्स

शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राज.)

फोन : (0294) 2425843

समर्पित

धर्मदर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर)
के संस्थापक अध्यक्ष,
निष्काम समाजसेवी, कर्त्तव्यनिष्ठ,
भारतीय संस्कृति के संवाहक,
धर्मपरायण, गुरुभक्त,
दिव्य चारित्र आत्मा

श्री अमृत लालजी जैन

की पुण्य स्मृति में
श्रद्धान्वत् समर्पित

धर्म दर्शन सेवा संस्थान
धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान

प्रस्तावना

मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने का विज्ञान और विधान संस्कृति कहलाता है। संस्कृति न केवल मानव को परिष्कृत और परिमार्जित करती है बल्कि मानव समाज को भी ऊँचा उठाती है। संस्कृति वास्तव में वह जीवन पद्धति है जिसकी स्थापना मानव, व्यक्ति तथा समूह निर्माण के रूप में करता है।

भारतीय संस्कृति एक ऐसी विश्व संस्कृति है, जो मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने की क्षमता से ओत-प्रोत है। वह उच्चस्तरीय विचारणा जिससे व्यक्ति अपने आप में संतोष और उल्लास भरी अन्तःस्थिति पाकर सुख और शान्ति से भरा-पूरा जीवन जी सके, भारतीय तत्वज्ञान में कूट-कूट कर भरी है। वह आदर्शवादी क्रिया पद्धति जो सामूहिक जीवन में आत्मीयता, उदारता, सेवा, स्नेह-भावना, सहिष्णुता और सहकारिता का वातावरण उत्पन्न करती है, भारतीय संस्कृति के शिक्षण की मूलधारा है। इस महान तत्वज्ञान का अवगाहन भारतीय प्रजा चिरकाल तक करती रही और इसके फलितार्थ इस रूप में सामने आये कि यहाँ के नागरिकों को समस्त संसार में देव पुरुष कहा गया और इस भूमि को देव भूमि के नाम से सम्बोधित किया गया। यहाँ के निवासी प्रेम, सदाचरण, सुव्यवस्था और समृद्धि का संदेश और मार्गदर्शन लेकर विश्व के कौने-कौने में पहुँचे तथा शांति और प्रगति के साधन जुटाने का नेतृत्व करते रहे।

सार्वभौम मानवीय आदर्शों से ओत-प्रोत भारतीय संस्कृति किसी वर्ग, सम्प्रदाय या देश, जाति की संकीर्ण परिधियों में बंधी हुई साम्प्रदायिक मान्यता नहीं है; न किसी व्यक्ति विशेष या शास्त्र विशेष को आधार मानकर उसकी रचना की गई है। अपितु सार्वभौम मानवीय आदर्शों के अनुरूप उसका सृजन हुआ है और देश-काल-पात्र के अवरोध से उसमें हेर-फेर करना पड़े, ऐसी त्रुटि नहीं रखी गई है। उसे निःसंकोच सार्वभौम, सर्वकालीन और शाश्वत कहा जा सकता है। वर्तमान समय में भी वह मनुय मात्र की तमाम विसंगतियों से उबरकर उज्ज्वल भविष्य की और ले जा सकती है।

धर्म, अध्यात्म, ईश्वर, जीव, प्रकृति, परलोक, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक, कर्म, अकर्म, पाखण्ड, पुरुषार्थ, नीति, सदाचरण, प्रथा, परम्परा, शास्त्र, दर्शन और मान्यताओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति मनुष्य में चरित्रवान्, संयमी, कर्त्तव्यपरायण, सज्जन, विवेकवान्, उदार और न्यायशील बनने की प्रेरणा भरती है, सबमें अपने जैसी आत्माओं को समाया देखकर सब के साथ अपनी पसन्द जैसा सौम्य, सज्जनता से भरा व्यवहार करना सिखाती है और बताती है कि भौतिक सफलताएँ तथा उपलब्धियाँ न मिलने पर भी विचार एवं कर्म की उत्कृष्टता के साथ जुड़ी हुई दिव्य अनुभूति मात्र

का अवलम्बन करके अभावग्रस्त परिस्थितियों में भी आनन्दित रहा जा सकता है। अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य की प्राथमिकता, आलस्य और प्रमाद का अंत और प्रचण्ड पुरुषार्थ में निष्ठा, अपने लिए कम दूसरों के लिए ज्यादा, यही तो भारतीय संस्कृति के मूल आधार हैं।

भारतीय संस्कृति का अर्थ इसकी परिधि अथवा उपयोगिता भारत देश की सीमा क्षेत्र में सीमित कर देना ही नहीं है, बल्कि वह असीम है, सार्वभौम एवं सर्वजनीन है। उसे मानव संस्कृति या विश्व संस्कृति ही कहना चाहिए। इसके निर्माताओं का चिंतन सुविस्तृत था वे जो सोचते थे वह देश, काल, वर्ग की सीमाओं से बहुत आगे की बात होती थी। विश्व मानव, विराट् विश्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम् से कम की बात उन्होंने कभी नहीं सोची। इसी में विश्व शान्ति के सूत्र सन्निहित हैं।

भारतीय संस्कृति हमें अपने उपर अनुशासन करना सिखाती है। वह अनुशासन पुलिस या सेना की भाँति बाहर से थोपा हुआ न होकर प्रेम, सूत्र और नीति का अनुशासन है। न्याय, सत्य और प्रेम ये सदा सनातन एक से रहने वाले तत्व हैं। इनके अनुसार जो बात, उक्ति या मार्ग आज सत्य हैं, वह सदा सत्य रहने वाला है। किसी अनुचित कामना, इच्छा, वासना, तृष्णा को कभी न बढ़ने देना चाहिए अन्यथा जीव अधिकाधिक बन्धन में बंधता जाता है। इसलिए इस संस्कृति में त्याग और परोपकार का बहुत महत्व है। सच्चे परिश्रम और इमानदारी से जो कुछ भी प्राप्त हो जाए, इसी पर निर्वाह करने पर जोर दिया गया है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह और संयम को ही जीवन का आधार बनाने की बात कही गई है और ये ही पर्यावरण सुरक्षा के सूत्र हैं।

परम पूज्य आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव भारतीय संस्कृति के संरक्षक, समर्थक और प्रचारक हैं। आपकी प्रेरणा से ही अक्टूबर २००५ में आपके चातुर्मास प्रवास के समय उदयपुर में एक वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत लेखों में से कुछ चयनित लेख इस पुस्तक में प्रकाशित किए जा रहे हैं।

आशा है पाठकगण इन लेखों से प्रेरणा प्राप्त कर विश्व शान्ति और पर्यावरण सुरक्षा के प्रति अपने कर्त्तव्य का बोध कर अपना योगदान देने के लिए पुनर्संकल्पित होंगे।

उदयपुर
26-01-2006

- डॉ. नारायण लाल कछारा

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	रचियता	पृष्ठ सं.
	शुभाशीष एवं शुभाशायें	- आचार्य श्री कनकनंदी जी	8
1.	भारतीय संस्कृति और विश्व शान्ति	- अमृत लाल जैन	10
2.	भारतीय संस्कृति एवं विश्व शान्ति	- रणजीत जैन	14
3.	भारतीय संस्कृति में निहित विश्व शान्ति के शाश्वत मूल्य	- प्रो. हनुमानसिंह वर्डिया	19
4.	अहिंसा का अर्थशास्त्र एवं विश्व शान्ति	- डॉ. दिलीप धींग	25
5.	भारतीय संस्कृति में निहित पर्यावरण सुरक्षा	- सोहनलाल देवड़ा	33
6.	भारतीय संस्कृति में निहित पर्यावरण सुरक्षा	- कनकमल हाड़ोतिया	37
7.	भारतीय संस्कृति एवं पर्यावरण संरक्षण	- नवल किशोर चोरसिया	45
8.	जैन धर्म की पर्यावरणीय चिन्ताएं	- डॉ. दलपतसिंह बया	52
9.	पर्यावरण सुरक्षाः प्राचीन भारतीय सन्देश	- साध्वी ऋद्धिश्रीजी	59

शुभाशीष एवं शुभाशायें

- वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी जी गुरुदेव

भारतीय संस्कृति वैश्विक, सार्वभौम, शाश्वतिक, आध्यात्मिक, प्राकृतिक, सर्वजीव हितकारी-सर्वजीव सुखकारी, उदार संस्कृति होने से इस में विश्व में वर्तमान में ज्ञात-अज्ञात, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध समस्त सत्य-तथ्य, ज्ञान-विज्ञान, नियम, कानून, संविधान- आदि समाहित है जिस प्रकार अनन्त आकाश में ज्ञात-अज्ञात, दृश्य-अदृश्य समस्त-सूर्य-चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र, आकाश गंगा, Black-Hole (श्याम-विवर), Black- Matter, अन्तरिक्ष-किरण आदि समाहित है, अवकाश प्राप्त है। भारत की दीर्घ परतंत्रता के कारण तथा वर्तमान में अयोग्य-शिक्षा पद्धति, गन्दी-राजनीति भारतीय संस्कृति से भिन्न अन्य संस्कृति के संविधान से प्रभावित संविधान गुलामी संकीर्ण-मानसिकता, भौतिक चौका-चौंध से चौंधिया हुआ भारतीय विवेकरूपी चक्षु. पाश्चात्य तथा नट नटी (हीरो-हीरोईन) नेता, अभिनेता-खेलनेता आदि के अन्धानुकरण रूपी बादल के कारण भारतीय संस्कृति रूपी सूर्य-किरणें आच्छादित है। परन्तु वर्तमान के वैज्ञानिक अनुसंन्धान पर्यावरण सिद्धान्त-पारिस्थितिकी, वैश्विकरण, समाजवाद-लोक तंत्रात्मक शासन, विश्वशांति की आवश्यकता, समानाधिकार आदि के कारण उपर्युक्त बादल शनैःशनैः घट रहा है, छट रहा है, हट रहा तै जो कि स्व-पर-विश्व कल्याण के लिए शुभकर है, हितकर है। इस महान् पवित्र कार्य के लिए हमारा ससंघ, मेरे द्वारा आशीर्वाद प्राप्त (1) धर्मदर्शन-विज्ञान शोध संस्थान (2) धर्म दर्शन सेवा संस्थान तथा हमारे देश-विदेश के जैन जैनेतर भक्तगण तन-मन-धन-समय-श्रम से सतत् अथक प्रयासरत है। एतदर्थ-साहित्य लेखन-प्रकाशन कक्षा शिविर संगोष्ठी, देश-विदेश में धर्म का प्रचार-प्रसार-नशामुक्ति, प्रेम-संगठन संस्कार-सदाचार, समता-शान्ति की स्थापना आदि-कार्य-कर रहे हैं। इस श्रृंखला में 2005 को 7 वीं स्थानीय संगोष्ठी का आयोजन-रखा गया था। संगोष्ठी स्थानीय होने पर भी शोध-पत्र स्तरीय थे। प्रस्तुत स्मारिका में उसमें से कतिपय शोध-पत्र का चयन किया गया है। इस संगोष्ठी में (1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान (2) दि-जैन समाज उदयपुर (3) प्रो- हनुमान प्रसाद वर्डिया (4) अमृतलाल जैन (5) डॉ. नारायणलाल कच्छारा का योगदान उल्लेखनीय रहा। एतदर्थ उन्हें मेरा सधन्यवाद शुभाशीर्वाद।

उपर्युक्त उद्देश्य को विश्वस्तर पर क्रियान्वयन करने के लिए हमारे संसघ तथा आचार्य महाप्रज्ञससंघ के सान्निध्य एवं मार्गदर्शन में 2007 को भुवाणा (उदयपुर) में ''जैन एकता एवं विश्वशांति के लिए जैन धर्म की प्राशंगिकता/भूमिका'' के ऊपर अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी है जिसमें देश-विदेश के जैन-जैनेतर धर्मपंथ के साधु-संघ, संगठन भाग लेगें। एतदर्थ मैंने ''जैन एकता एवं विश्वशान्ति'' (ग्रन्थांक 152) कृति की रचना की है जो कि दूसरों के लिए मार्ग दर्शिका का कार्य करेगी। उपर्युक्त कार्य में विश्व मानव सहदय से स्वेच्छा से भाग लेकर, योगदान करके-स्व-पर-विश्व शान्ति के लिए महत्ती भूमिका का निर्वाह करें ऐसी पवित्र उदात्तभावना के साथ ...

आचार्य कनकनन्दीजी

शिक्षा संस्कृति की राजधानी उदयपुर

5-12-20005

भारतीय संस्कृति और विश्व शांति

- अमृत लाल जैन

'संस्कृति' एक विशाल अर्थयुक्त शब्द है। 'सम्' धातु में 'कृ' प्रत्यय से यह शब्द बनता है जिसकी परिधि में इहलोक व परलोक दोनों ही समाविष्ट है। प्राचीनतम् व्याकरणाचार्य पाणिनी ने संस्कृति को सम् करोति व भूषण करोति से उत्पन्न माना है। इसका आशय है जो गुणों की वृद्धि व दोषों का शमन करे वह संस्कृति होती है। इतिहास, धर्म, साहित्य और कला तो इसकी संतति है।

पाश्चात्यीय भाषा में संस्कृति का अर्थ इतना व्यापक व गहन नहीं है। वहाँ इसे Culture या Civilization कहा गया है जो संकुचित परिवेश को ही प्रकाशित करने में समर्थ है। यों लगता है जैसे मात्र शब्दानुवाद है।

भारतीय संस्कृति के अनेक नाम उपयोग में आते हैं। वैदिक संस्कृति, सनातन संस्कृति, श्रमण संस्कृति, हिन्दू संस्कृति, आर्य संस्कृति आदि प्रचलित नाम रहे हैं। इस संस्कृति में जीवन चर्या व सामाजिक व्यवस्था को सांगोपांग देखने का सफल प्रयोग हुआ है। हमारे जनजीवन में परिव्याप्त गुरु-शिष्य परंपरा, संयुक्त परिवार व्यवस्था, आश्रम परम्परा आदि इसके वैशिष्ट है। यही कारण है कि पुरातन होते हुए भी नूतनता के साथ इसका विलक्षण तादात्म्य है। यही इसकी अमरता का कारण भी है। यों तो संस्कृतियाँ विश्व भर में जन्मी, पली और पनपी किंतु वे सभी आज लुप्तप्रायः है। यूनान, मिश्र, रोम, सुमेरियन आदि सभ्यतायें ध्वस्त हो गई है। किंतु अपनी सहिष्णुता व विश्वकौटुम्ब भाव के कारण हमारी संस्कृति अक्षुण्ण है।

भारतीय संस्कृति व सभ्यता पर आघात-प्रतिघात होते रहे हैं। हूण, शक, गजनी, गौरी, अब्दाली इत्यादि आक्रांताओं ने इसे रौंदने का प्रयास किया, वे आए, भौतिक रूप से विजयी हुए पर इस संस्कृति के प्रवाह में ऐसे घुले-मिले कि आज उनकी पृथक् पहचान भी शेष नहीं है। यहाँ तक कि विश्वविजेता सिकंदर के सेनापति सेल्युकस जैसे कई लोगों ने तो यहाँ अपनी पुत्रियों के वैवाहिक सम्बन्ध तक स्थापित कर संस्कृतिक उत्कृष्टता को प्रमाणित ही किया था।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति किसी एक भू-भाग की संस्कृति न होकर प्राणी

मात्र के लिए सृजित विश्व संस्कृति है। हमने भौतिकवादी सोच को जीवन का यथार्थ न मानते हुए उसमें आगे चरम लक्ष्य निर्धारित कर मोक्ष की कामना की है। इसलिए भौतिक द्वंद्ववाद में घिर कर रुस जैसा राष्ट्र मात्र 70 वर्षों में ही खण्ड-खण्ड होकर आहत है, किंतु हमने अपनी परिकल्पना में अविनाशी आत्मा को महत्त्व देकर जीवमात्र में समान दृष्टि से संवेदना रखने को प्रोत्साहन दिया है। इसलिए चींटी से कुंजर तक में एक ही आत्मा का दर्शन, एक चैतन्यमयी शक्ति का निवास मानने की परंपरा हमारा अंगभूत स्वभाव है। हमारे सहज भाव उद्घोष करते रहे हैं –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणी पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भागभवेत्।।

हमारी संस्कृति में कहीं भी जड़ता या कट्टरता का भाव नहीं है। औदार्य व लचीलापन इतना है कि अनेकांतवाद दर्शन को संपूर्ण मान्यता मिली है। उपनिषद् कहते हैं- 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति।' हमने अपनेपन का आधार विचारों की सत्यता को माना है न कि परस्पर सम्बंधों को, इसलिए जब मंडन मिश्र व शंकराचार्य का शास्त्रार्थ हुआ तो मंडन मिश्र की ऋषिपत्नी, विदूषी भारती को निर्णायक नियुक्त किया जाने पर तथ्यों के आधार पर उसने शंकराचार्य को विजयी घोषित किया।

भारतीय संस्कृति का प्रभाव कभी भी अवरुद्ध नहीं हुआ है। प्रसंगानुकूल व्यावहारिक पक्षों को जोडने की तत्परता ने इसे न केवल विशाल बनाया वरन् श्रेष्ठ भी बना दिया है। वेदों की ऋचाओं को रचा जाने के बाद भी उपनिषद्, ब्राह्मण, अरण्यक, पुराण आदि अनेक भाष्य लिखे जाते रहे हैं। विचार व प्रतिविचार के प्रति समतुल्यता व तथ्यों पर आधारित स्वीकारोक्ति के कारण द्वैत-अद्वैत, सगुण-निर्गुण, ज्ञान-भक्ति, सांख्य-योग और यहाँ तक की आस्तिक-नास्तिक भावों को भी ग्रंथों में पूरा-पूरा सम्मान मिला है।

आगम साहित्य व जैन परम्परा के अनेक ग्रंथ इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है कि धर्म के साथ विज्ञान को कितना सुसंयोजित किया गया है। ऋषियों द्वारा प्रकल्पित ऐसे-ऐसे प्रयोग दृष्टिगत होते हैं जो आज के वैज्ञानिकों के लिए भी केवल कल्पना ही है। ऐसी अनेक कल्पनाएँ विज्ञान के आविष्कारों के कारण सत्य में परिवर्तित हो चुकी है तथा विज्ञान के प्रयोगों का बृहद भाग अभी भी इन ग्रंथों में छिपा पडा

है। 'धवल, महाधवल, तिलोयपण्णति, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पंचास्तिकाय, गोम्मटसार, द्रव्य संग्रह एवं मोक्षशास्त्र ऐसे ही कतिपय शास्त्र है।

आज विश्व अशांति के ज्वालामुखी पर बैठा है। अशांति की बात सभी करते है पर पद्धति केवल भारतीय संस्कृति में ही दिखाई देती है। हमारी संस्कृति का आदर्श है- 'तेन त्यक्तेन भूंजिता'। परिश्रम पूर्वक सत्य मार्ग पर सदाचरण द्वारा सम्पत्ति अर्जन करें पर उसका उपभोग आवश्यकता अनुसार ही करके न्यासी भाव से उसका अन्यों के लिए उपयोग लेंगे। जो आवश्यकता से अधिक पर अधिकार पाता है वह सँपत्ति का अपहर्ता होगा तथा लौकिक दृष्टि व पारलौकिक दृष्टि दोनों से अपराधी होगा। हमारे यहाँ धन के त्याग को अधिक महत्त्व दिया गया है। यही विश्वशांति का सूत्र है।

आज दुनिया में जो अशांति है उसका बड़ा कारण अपने अधिकारों का विस्तार करने की लालसा है। पश्चिमी देशों ने विश्वशांति के लिए बल प्रयोग का साधन अपनाने का प्रयास किया है। इसविधि से चुप्पी हो सकती है पर शांति नहीं, भीतर ही भीतर दावानल धधकता रहता है और अवसर पाकर फूट पडता है। विदेशी संस्कृति के समर्थक चुप्पी को ही शांति मानने की भूल करते हैं। अतः अनेक युद्धों के बाद भी शांति की झलक तक नहीं दिखाई दे सकी।

शांति वृति परिवर्तन से आती है न कि क्रिया परिवर्तन से। आज अपसंस्कृति का विस्तार होता जा रहा है। देशों के मध्य अविश्वास, लोगों में परस्पर अविश्वास और यहाँ तक कि दो परिचितों में भी घोर अविश्वास फल रहा है। इसका कारण है हमने शांति, समृद्धि, संवेदना आदि की गलत व्याख्याएं करके अपनी सुविधा के अनुसार उसकी परिभाषाएं गढ ली है। नैतिक शिक्षा व आचारण की शुद्धता के आड़ में पीढियाँ भटक रही हैं। आय में बेतहाशा वृद्धि हो तथा भोग-विलास की सामग्री को अधिकतम जुटाया जा सके, इसकी होड़ है, अर्थ सम्पन्नों के दोषों को छिपाने व उनका महिमामंडन करने की घृणित परम्परा चल पडी है जो कि स्पष्टः पाश्चात्य संस्कृति का कुप्रभाव है। यदि हमें आदर्श मानव, शांत विश्व और सुसंस्कृत, सुसभ्य नागारिक तैयार करने हैं तो भारतीय संस्कृति का अनुसरण करना ही होगा।

अपनी पाती को पहचानना, उसे सुसमायोजित करना तथा आचरण में प्रयुक्त

करना ही संस्कृतिक व धार्मिक कर्म है। आचार्य प्रवर श्री कनकनंदी जी महाराज ऐसे ही प्रयोगों में रत हैं। आपने भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पृष्ठों से वे सभी महत्त्वपूर्ण प्रयोग चुनकर धर्म के साथ समाहित किए हैं जो मानव को शांति, साधना, मोक्ष के लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक हैं।

जब धरती पर घोर जंगली मानव रहते थे।
नहीं जानते वस्त्र पहनना, पशुवत ही फिरते थे।।
तब अगत्स्य (मुनि) शेल लांगते, सागर पीते।
कृणवन्तों विश्वम् आर्य का घोष करते फिरते थे।।

भारतीय संस्कृति एवं विश्व शान्ति

- रणजीत जैन

भारत एक विस्तृत भू-भाग व विशाल जनसंख्या वाला देश है। जो एक बहुभाषी एवं विविधता से परिपूर्ण राष्ट्र है। जिसकी बहुआयामी संस्कृति रही है। जिसमें विविध जाति, धर्म, वाणी, वेशभूषा के लोग निवास करते हैं। परन्तु इन सभी के बावजूद एक सामंजस्य परिलक्षित होता है और वह है 'अनेकता में एकता' और यही एकता भारतीय संस्कृति की आत्मा है।

वर्तमान में भारतीय संस्कृति जो कि विश्व भर में अपना दामन फैलाये हुए है; सहस्त्रों वर्षों की सामाजिक उथल-पुथल की देन है। जहाँ सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक परिवर्तन हुए वहीं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का मन्त्र देने वाले भारत ने न केवल बाहर से आने वाले यवन, अरब, मुगल, अंग्रेज को अपने में मिला लिया, बल्कि वो अपने आप को इस भारतीय संस्कृति में आत्मसात कर गए तथा यह संस्कृति सतत् प्रवाहमान रही।

इस भौतिकवादी युग में स्वार्थलिप्सा में डूबे हुए मनुष्य में क्षमा, दया, परोपकार, उदारता का सर्वथा अभाव पाया जाता है, मगर हमारी भारतीय संस्कृति में आज भी यह विशेषताएँ बहुतायत से पायी जाती हैं। जिसका स्पष्ट उदाहरण हमारा क्षमावाणी पर्व है। ऐसी उदांत्त भावना भारतीय संस्कृति के अलावा कहाँ पाई जा सकती है?

जिस संस्कृति में पृथ्वी को माँ, रहने वालों को भाई-बहिन का दर्जा दिया जाता है, जहाँ प्रत्येक समाज के तीज त्यौहार समन्वय की भावना से मनाये जाते हैं, ऐसी संस्कृति विश्व समुदाय की शान्ति में अपना वर्चस्व बनाये बिना कैसे रह सकती है।

समन्वय की भावना भारतीय संस्कृति की अति महत्वपूर्ण विशेषता रही और इसमें न तो कभी भाषा, वेशभूषा, रहन-सहन, खानपान, स्थान ही बाधक बने।

सहिष्णुता इसकी पहचान है। कोई कहीं भी जावे, न धर्म, न जाति, न भाषा उसमें आड़े आती है। कश्मीर से कन्याकुमारी, अटक से कटक तक हर भारतीय एक है और इसी सहिष्णुता ने विश्व को एक नई दिशा दी, जहाँ किसी भी वर्ग का व्यक्ति राष्ट्र के सर्वोच्च पद पर आसीन हो सकता है। ऐसी संस्कृति विश्व शान्ति की द्योतक नहीं तो क्या होगी ?

जिसका आधार स्तम्भ धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष है, जो न केवल भारतीय संस्कृति के अंग ही बने, अपितु विश्व के प्रत्येक समाज ने इसे आत्मसात करते हुए अपने व्यावहारिक जीवन में इनको अपनाते हुए अपना आदर्श माना। इनके कतिपय उदारहरण दृष्टव्य कर रहा हूँ-

(1) जिस देश की संस्कृति का आधार स्तंभ ही राजा हरिशचन्द्र की सत्यवादिता हो।
(2) मर्यादा पुरुषोत्तम राजा राम की वचनबद्धता से हो।
(3) देशभक्त भामाशाह जैसे त्यागवीर की भावना से हो।
(4) स्वामीभक्त पन्नाधाय जैसी वीरांगना की बलिदानता से हो।
(5) जहाँ की संस्कृति भक्ति भावना से बंधित न हो।
(6) जहाँ आज भी देश के प्रत्येक न्यायालय में गीता की सार्थकता मानी जाती हो।
(7) जहाँ माया-काया व छाया से दूरी बरती जाती हो।
(8) जहाँ ईश्वरीय आस्था सर्वोपरि मानी जाती हो। भारतीय सामाजिक परिवेश में एक ईश्वर की सत्ता की अमृत धारा बहती रहती है। प्रभु की सत्ता को साक्षी मानकर उसके प्रत्येक निर्णय को शिरोधार्य किया जाता है। लौकिक माया-काया जो कि कुछ समय पश्चात् मिटने वाली है उसके प्रति आसक्ति भाव को प्रकट करने वाली भारतीय संस्कृति जन-जन को सद्धर्म के पथ पर चलने को प्रेरित करती है।
(9) जहाँ धर्म निरपेक्षता देश की थाती हो।
(10) जहाँ के प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्र रूप से जीने का हक हो।
(11) जहाँ महाराणा प्रताप जैसे वीरों की देशभक्ति उदाहरणात्मक मानी जाती हो।

क्या विश्व के श्रेष्ठीगण उपरोक्त तथ्यों को नकार सकते हैं ? यदि नहीं, तो विश्व शान्ति की दिशा में ऐसा कौनसा क्षेत्र है जिसमें भारतीय संस्कृति अग्रणी नहीं हो।

भारतीय संस्कृति जिसका मूल सिद्धान्त ही परस्पर दया परोपकारिता, जियो और जीने दो है तथा जिस संस्कृति की पृष्ठभूमि पूजा भक्ति,शक्ति व आराधना है आज वो ही विश्व शांति में अपनी अग्रणी भूमिका का निर्वहन कर रही है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति का सामूहिक परिवारवाद का जो अपनापन है उसे संसार के कई अग्रणी व विकसित देश अपनाने में गौरव का अनुभव कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृति की विवाह पद्धति जो कि आदिकाल से धार्मिक संस्कृति से अनुप्राणित है इसको भी कई विदेशी युगलों ने सात फेरे लेकर अपनाया है और

अपने आप को गौरवान्वित अनुभव किया है।

अभिवादन एवं आतिथ्य संस्कृति 'अतिथि देवोभवः'। भारतीय संस्कृति में किसी का भी अभिवादन दोनों हाथ जोड़ विनयभाव से नमन कर किया जाता है और आज इस भारतीय संस्कृति को लगभग विश्व के कई देशों ने स्वीकार कर अपने लोक व्यवहार में अपना लिया है। जो कि आदर्श संस्कृति की परिचायक है।

भगवान महावीर का अहिंसावाद जो आज से 2675 वर्ष पुराना है क्या आज विश्व शान्ति का मूल मंत्र नहीं है? भगवान महावीर का जीवन तो अहिंसा का आलोक स्तम्भ है। उन्होंने प्रत्येक आत्मा में अहिंसा के ही दर्शन किए। उनके अनुसार प्रत्येक आत्मा में ब्रह्म है, जिसका प्रादुर्भाव वहीं है जहाँ पर अहिंसा है। अहिंसा भारतीय संस्कृति का प्राण है, जीवन है। संसार के सभी कार्य अहिंसा के लिए ही तो होते हैं। आज विश्व के सभी देश इसी अहिंसा को अपना प्रमुख सिद्धांत मानते हैं।

क्या अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी को विश्व शांति में योगदान हेतु याद (स्मरण) नहीं किया जाता है? जिन्होंने सादगी और सद्व्यवहार को स्वयं अपने जीवन में अंगीकार करते हुए सत्य, अहिंसा के बल पर देश को आजादी दिलवाई। इसी अहिंसा आंदोलन से प्रेरित होकर आज विश्व के अनेक देशों ने अपनी स्वतंत्रता को प्राप्त किया।

पंडित नेहरू द्वारा प्रतिपादित पंचशील सिद्धांत जिसके मुख्य बिन्दू अखण्डता, अनाक्रमण, आंतरिक हस्तक्षेप नहीं, समानता एवं पारस्परिक सम्मान एवं शांतिपूर्ण सहअस्तित्व थे। जिसको सन् 1966-71 में भारत और पाकिस्तान के बीच के युद्ध में आधार स्तम्भ माना गया एवं भारत ने इस पंचशील सिद्धांत पर कायम रहते हुए अपने द्वारा जीते हुआ बहुत बड़े पाकिस्तान के भूभाग को पुनः लौटा दिया।

यदि भारतीय संस्कृति तथ्यहीन होती तो क्या ऐनीबसेन्ट और मदर टेरेसा जैसी विदेशी महिलाएँ भारत को अपना देश मानती।

जिस देश में साहित्य एवं संस्कृति को समाज का आइना एवं धरोहर के रूप में माना जाता हो उसका अस्तित्व आज भी विश्व शांति की आधारशीला के रूप में प्रख्यात है।

जहाँ शराब-शबाब-वेशभूषा व कॉकटेल पार्टियाँ आधुनिकता का रूप लेकर युवा पीढ़ी को पथभ्रष्ट कर रही है और वस्त्र विहीन संस्कृति को बढ़ावा दे रही है। वहीं हमारी भारतीय संस्कृति विश्व के सामाजिक परिवेश में घुसपेठ कर इसको

नकारात्मक कर रही है और काफी परिवर्तन इसके माध्यम से ही सम्भव है। संसार में ऐसा कोई देश नहीं है जिसे हमारी भारतीय संस्कृति ने प्रभावित नहीं किया हो।

क्या इतिहासकार इस सत्य को नकार सकते हैं? रानी पद्मावती ने अपने सतीत्व की रक्षा हेतु सैंकड़ों रानियों के साथ अपने आप को अग्नि को समर्पित कर दिया। स्वाभिमान की रक्षा की यह अनूठी मिसाल विश्व के लिए प्रेरणादायी नहीं है क्या ?

एक धोबी के लांछन मात्र से मर्यादा पुरुषोत्तम राजा राम ने माता सीता का परित्याग कर दिया हो। परिणाम स्वरूप आज कई विदेशी महिलाएँ एक पुरुष के साथ अपना जीवन निर्वहन करने में श्रेष्ठता समझ रही है।

संयुक्त राष्ट्र, WHO जैसी विश्व संस्थाएँ भी हमारी इसी संस्कृति को आधार मान शांति प्रक्रिया में अग्रसर हो प्रमुखता से कार्य कर रही है।

वस्त्र संस्कृति किसी भी देश की संस्कृति का आइना होती है। लज्जा ही नारी का गहना होता है। इसके अभाव में उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। आज जो भी अराजकता आदि की घटनाएँ हो रही है उसके पीछे लज्जा की सीमाएँ तोड़ना ही मुख्य कारण हैं। भारतीय नारी का परिधान साड़ी जिसे आज कई विदेशी महिलाएँ अपना रही हैं एवं अपने आपको गौरवान्वित महसूस करती है। क्या हमारी संस्कृति ने उनको प्रभावित नहीं किया?

जब कभी भी कोई प्राकृतिक आपदा अपना प्रकोप दिखाती है तब सारा विश्व पीड़ितों की मदद हेतु बिना किसी भेदभाव के तैयार हो जाता है। कालान्तर में इस संस्कृति का उदय महाभारत के अन्तिम काल में पूज्य महाराज अग्रसेन द्वारा एक रुपया एक ईंट के रूप में आज भी साकार हो रहा है।

संचार क्रान्ति के युग में जहाँ समाचार-पत्र, इंटरनेट, टीवी आदि अपनी-अपनी क्षमता से विश्व जन मानस को प्रभावित किए हुए है। वहीं हमारे देश के प्रमुख टीवी चैनल आस्था जो मुख्यतः संत-मुनियों व विद्वानों के प्रवचनों को विश्व के 183 देशों में प्रसारित कर रहा है जिसमें भारतीय संस्कृति निहित है। इसके प्रभाव से सैकड़ों लोगों की दिनचर्या ही परिवर्तित हो गई है। हाल ही इसी चैनल द्वारा यु.एस.ए. में पूज्य आसारामजी के प्रवचनों को प्रसारित किया जा रहा है।

कालान्तर में स्वामी विवेकानन्द जैसे विद्वान ने अपने प्रवचन के माध्यम से न केवल विश्व समूह को प्रभावित ही किया वरन् मनन एवं मन्थन हेतु उन्हें मजबूर कर दिया।

भारतीय संस्कृति के तीर्थस्थल हरिद्वार, ऋषिकेश, पुष्कर, मथुरा, वृंदावन, पालीताणा, सम्मेतशिखर, वैष्णोदेवी आदि स्थानों पर विदेशी पर्यटक जाकर हमारी भारतीय संस्कृति को देखकर शांति का अनुभव करते हैं एवं भारत को स्वर्ग स्थली के रूप में व्याख्या करते हैं तथा हरे रामा हरे कृष्णा को उद्घोष आज हमारी संस्कृति के प्रयाय बन चुके हैं।

वर्तमान में लोकनृत्य जो कि भारतीय संस्कृति के धरोहर माने जाते हैं विश्व में शांतिदूत का काम कर रहे हैं एवं इसे अपनाकर अपने आपको उसमें समाहित कर रहे हैं। हमारे देश के लोक कलाकार विदेशों में जाकर नृत्य एवं गायन कला के माध्यम से भारतीय संस्कृति की जो छटा बिखेर रहे हैं उससे समूचा विश्व प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है।

दुनिया में शायद ही ऐसा कोई देश हो जिसने चाणक्य नीति व कौटिल्य की अर्थशास्त्र नीति, जो शासकीय व अर्थ की धूरि रही है न अपनाया हो।

अन्त में हमारी संस्कृति जो विश्व के सबसे प्राचीन संस्कृतियों में से एक है व हर युग में इसने विश्व शांति को प्रभावित किया है। यह संस्कृति मानव जीवन में विचार चिन्तन, व्यवहार, आचरण को एक निश्चित दिशा प्रदान कर रही है। हमारी संस्कृति से विश्व में शांति एवं विकासशीलता का प्रसार हो रहा है एवं यहाँ तक कहें कि हमारी संस्कृति मानवीय जीवन मूल्यों को विशिष्ट गरिमा प्रदान कर रही है। जिस संस्कृति का स्वरूप अनेकता में एकता, वसुधैव कुटुम्बकम की भावना सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में बांधती है, वह सर्वग्राही व शाश्वत तथा सार्वभौमिक है। जिसका बेमिसाल उदाहरण 8 अक्टूबर 2005 को आए विनाशकारी भूकम्प ने हमारे देश एवं पाकिस्तान में न केवल तबाही की बल्कि हजारों इंसानों की बलि के साथ उनका सर्वस्व लूट लिया। मगर देखिए हमारी संस्कृति जिसका न घर रहा न परिवार जो भूखे प्यासे खुले आसमान के नीचे समय गुजार रहे हों वो हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान में आई इस त्रासदी के लिए अमन और शांति की कामना ईश्वर से कर रहे हैं।

हमारी यह संस्कृति जो ऋषि-मुनियों व तपस्वियों की देन है, एक प्रकृति प्रदत्त वरदान है और वो आज विश्व-शान्ति के साथ उसके जनमानस को भी संस्कारित कर रही है।

भारतीय संस्कृति में निहित विश्वशान्ति के शाश्वत मूल्य

- प्रो. एच. एस. वर्डिया

विश्व के इतिहास पर एक गहन विहंगम दृष्टि डालें तो निष्कर्ष निकलता है कि गत 3000 वर्षों में 2000 वर्ष मानव संघर्ष व युद्ध में संलग्न रहा है। गत शताब्दी में हम दो विश्व युद्ध के साक्षी रहे हैं। जिसमें 2.5 करोड़ से अधिक व्यक्तियों की असमय मृत्यु हो गई एवं लगभग 4 करोड़ व्यक्ति आणाविक प्रभाव अथवा अन्य कारणों से आंशिक शारीरिक क्षमता खो बैठे। यहां तक कि ऐसे व्यक्तियों से उत्पन्न सन्तान भी असामान्य हुई। वे आज जीवित है। एवं इस भयावह विकास, जिस पर हम फूले नहीं समा रहे है, पर अट्टहास कर रहे है। वे सभ्यता को मात्र विकास के नाम पर विनाश का पर्याय मानने को विवश है।

गत् 2900 वर्षा में युद्ध द्वारा जन-धन की जितनी हानि हुई, उसकी कई गुना हानि 20वीं सदी के दो विश्व युद्धों में हुई। इसके अतिरिक्त वियतनाम, कोरिया इजरायल, भारत-पाक युद्धों में भी जन धन हानि का आकलन करे तो हमारे मन में स्वाभाविक प्रश्न उठेगा कि विज्ञान व भौतिक संसाधनों के विकास ने हमें शांति से दूर धकेला है एवं हमारे जीवन में युद्ध तनाव शोषण एवं अहं की पुष्टि को ही महत्वपूर्ण मानने को विवश किया है। आधुनिक संदर्भ में राष्ट्र या राष्ट्रों के मध्य युद्धों, युद्ध विराम, युद्ध का क्रम चलता रहता है जिसे नियंत्रित करने हेतु सयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई। इसके अतिरिक्त विश्व शान्ति को आज आंतकवाद से भी खतरा उत्पन्न हो गया है।

आंतकवाद कुछ व्यक्तियों द्वारा अथवा किसी असवैधानिक संस्था द्वारा अपनी मांगों को मनवाने के लिए दबाब समूह के रूप में हिंसा को शस्त्र के रूप में उपयोग में लेना है। न्यूयार्क के वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर, हमारी लोकसभा एवं लन्दन में बम विस्फोट भी शान्ति को नष्ट करने में महत्वपूर्ण असामाजिक भूमिका का निर्वहन करते रहे हैं।

ऐसी स्थिति में आइन्सटाइन का यह वाक्य महत्वपूर्ण है जिसमे उन्होंने कहा कि मुझे नहीं मालूम कि तृतीय विश्व युद्ध कब होगा एवं उसमें आणविक शक्ति का उपयोग किस सीमा तक होगा परन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि चतुर्थ विश्व

युद्ध की स्थितियां यदि उपस्थित होती है तो वह युद्ध पत्थर, तीर आदि से लड़ा जाएगा। यह कह कर आइन्सटाइन ने प्रसिद्ध इतिहासकार टोयनबी के चक्रीय सिद्धान्त Cyclic theory को पुष्ट किया है। इनके अनुसार तृतीय विश्व युद्ध हमारी सभ्यता व संस्कृति को नष्ट कर देगा एवं हम पुनः पाषाण युगीन जीवन जीने को विवश होंगे। अतः आज विश्व समुदाय युद्ध न होने देने हेतु प्रयत्न शील है। 1954 में बाडूंग सम्मेलन में, 5 राष्ट्र (चीन, भारत, लंका, इण्डोनेसिया, तिब्बत) पंचशील के माध्यम से विश्वशान्ति में सहयोग की अपील व शान्ति के लिए काम करने को प्रतिबद्ध हुए थे। पंचशील की कार्य योजना निम्न प्रकार से बनाई गई।

1. आपसी सहयोग
2. मतभेदों को वार्ता द्वारा दूर करना
3. अंहिसा को सार्वजनिक मान्यता
4. आन्तरिक मामलो में एक दूसरे राष्ट्रों के मध्य हस्तक्षेप नहीं करना
5. सूचना का आदान प्रदान
6. निरन्तर सम्पर्क की आवश्यकता

इन सब के उपरान्त भी 1962-63 में चीन का भारत पर आक्रमण हमें सोचने को विवश कर रहा है कि क्या एक समुद्ध संस्कृति के अभाव में विश्व शान्ति को बनाये रखा जा सकेगा।

वर्तमान समय में भौतिक वाद ने हमारी आवश्यकताओं को असीमित बना दिया है। आज व्यक्तिमात्र व्यक्ति वादी एवं भौतिक सुख साधन युक्त विचारों तक सीमित है। राष्ट्र भी भौतिक सीमा के स्थान पर वैचारिक साम्राज्य स्थापित करने में प्रयासरत हैं जिसका उदाहरण अमेरिका है। वैश्विक दौर में वह विश्व में अपना राजनैतिक प्रभाव बढाने को आतुर है। युद्ध मनो विज्ञान कहता है कि व्यक्ति अथवा राष्ट्र अपने अहं, अपने वर्चस्व, अपने आर्थिक हितों के लिए युद्ध करता है। यह स्थिति आज भी विद्यमान है। अतः हमें सोचना होगा कि मानव जीवन को सुरक्षित रखने हेतु वैश्विक शान्ति को स्थायी रूप से कैसे सुनिश्चित किया जाय। इस सदर्भ में चिन्तन की सूई घूमती हुई भारतीय संस्कृति पर टिक जाती है। भारतीय संस्कृति में ऐसी क्षमता व विशेषता है कि जिनका विश्व समुदाय द्वारा आत्मसातीकरण निश्चय ही भय मुक्त, युद्ध मुक्त विश्व की कल्पना को साकार करने की दिशा में एक सफल व ठोस कदम होगा। भारतीय संस्कृति की चर्चा करने से पूर्व संस्कृति पर भी थोड़ी चर्चा आवश्यक है। संस्कृति शब्द की उत्पत्ति संस्कार शब्द से मानी

जाती है। संस्कार से अभिप्राय है कि कतिपय धार्मिक क्रियाओं द्वारा व्यक्ति को एक सोपान (Stage) से दूसरे सोपान में प्रवेश के योग्य बनना।

प्रो. बलिराम पाण्डेय ने हिन्दू जीवन में 40 संस्कार बतलाये परन्तु 16 संस्कार प्रमुख है जिनमें गर्भा धान संस्कार से अत्येष्ठी संस्कार तक सम्मिलित है। संस्कार का दूसरा अर्थ शुद्ध करना भी है। इस अर्थ में संस्कृति एक एसे समग्र जीवन की सूचक होती है जिसे विभिन्न संस्कारों द्वारा संस्कारीत होने से प्राप्त किया जा सकता है। प्रसिद्ध मानव शास्त्री टायलर ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि संस्कृति वह जटिल समग्रता है; जिसमें ज्ञान विश्वास कला आचार, कानून, प्रथा एवं ऐसी ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश हो जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के नाते प्राप्त करता है।

इस प्रकार संस्कृति एक सामाजिक विश्वास है जिसे पीढी दर पीढी हस्तान्तरित किया जा सकता है। संस्कृति की विशेषताओं को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

1. संस्कृति मानव निर्मित है।
2. संस्कृति मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।
3. संस्कृति का संचरण Transmission होता है।
4. संस्कृति में परिवर्तन हो सकता है।
5. संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार है।
6. संस्कृति मात्र मानव समुदाय में ही पाई जाती है।

अरनोल्ड मेथ्यू ने संस्कृति को Sweetness & Light अर्थात् मधुर एवं प्रकाश कहा है। अर्थात संस्कृति वह धरोहर है जिससे व्यक्ति प्रकाशमय होकर वातावरण में प्रेम व रोशनी का संचार करे।

संस्कृति व सभ्यता :–

अधिकांश व्यक्ति संस्कृति व सभ्यता को एक ही मान लेते हैं परन्तु वास्तविकता में दोनों में अन्तर है। संस्कृति का मूर्त पक्ष सभ्यता कहलाती है जिसमें हमारे रहने सहने, खाने-पीने यातायात, संचार, संप्रेषण माध्यम और ऐसी ही बहुत सारी वस्तुओं को गिनाया जा सकता है, एक उदाहरण से इन दोनों के अन्तर को समझा जा सकता है। भोजन की बात ही लिजिये। भोजन हमारी आवश्यकता है- प्राथमिक आवश्यकता

है। प्रश्न है- भोजन कैसा हो-शाकाहारी अथवा मांसाहारी, भोजन कब करना चाहिये- दिन में अथवा रात्रि में, भोजन कैसे करना चाहिये-जमीन पर बैठकर (नवकार मंत्र का पाठ पढ़कर) डाइनिंग टेबल पर, बफे, भोजन किन व्यक्तियों के साथ बैठकर करना चाहिये-परिवार जन, इष्ट मित्र, जातिय बन्धु (अन्य जातियों के साथ खाना-पीना निषेध था) भोजन किसके हाथ का बनाया हुआ हो। ऐसे प्रश्नों का उत्तर संस्कृति प्रदान करती है। आज भौतिक संस्कृति का विकास तो तीव्रतर गति से हो रहा है परन्तु अमूर्त संस्कृति में परिवर्तन शनैः शनैः हो रहा है। संक्षेप में हम कह सकते है कि जो हमारे व्यवहार का निर्धारण करने में 'क्या' 'क्यों' 'कैसे' 'कब' 'कहां' का उत्तर प्रदान करे वह अभौतिक संस्कृति है। यह हमारे विश्वास, श्रद्धा, मूल्यों, प्रथाओं आदि का संकुल है। सभ्यता में भौतिक संस्कृति का समावेश होता है। भौतिक संस्कृति में अभौतिक संस्कृति की अपेक्षा परिवर्तन की गति तीव्र होती है जिसके कारण औगबोर्न एवं निमकॉफ के अनुसार सांस्कृतिक विलम्बना की स्थिति उत्पन्न होती है।

महानुभावों।

संस्कृति पर संक्षिप्त चर्चा के पश्चात् अब हम भारतीय संस्कृति को समझने का प्रयास करेंगे। विश्व में जब अधिकांश व्यक्ति शिकारी अवस्था आरवेट अवस्था में थे, तब भारत में कृषि की उन्नत शैली विकसित हो गई थी। लिपि, जिसे हम ब्राह्मी लिपि के रूप में जानते हैं, भारत में आज से लगभग एक लाख वर्ष पूर्व (भगवान ऋषभदेव के काल से) विकसित हो चुकी थी। मोहन जोदड़ो, हड़प्पा आदि हमारी भित्ति चित्रशैली के उत्कृष्ट एवं गौरवशाली उदाहरण है। मानव ने आज से कई हजार वर्ष पूर्व कल्पना को जीवन्त रूप प्रदान करने हेतु चित्रों एवं काव्य रचना की कला का निर्माण किया। ये कलाएं, आज भी सजीव प्रतीत होती है। सम्राट अशोक का स्तूप आज भी वैज्ञानिकों के सामने अनेक जिज्ञासाएं जगाता है। जीरो जो गणित का आधार है, विश्व संस्कृति को भारत की देन है। पहिया-जिस पर सम्पूर्ण यातायात निर्भर है, भारत की सृजनात्मक पहल थी। सिन्धु घाटी की सभ्यता हमें बतलाती है कि जब विश्व के अधिकांश व्यक्ति गुफाओं में जीवन जीने को विवश थे तब भारत के लोग मकान, नालियां, स्नान घर आदि का उपयोग करते थे। हमारे यहां शल्यक्रिया जैसी विधा भी उन्नत अवस्था में थी। हम आज यह कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीनतम संस्कृति है।

परन्तु मात्र प्राचीन होने से हम पूज्य नहीं हो सकते हैं। हमें हमारी संस्कृति के इन सांस्कृतिक तत्वों एवं प्रतिमानों पर विचार करना होगा जिससे हम कह सकें कि केवल भारतीय संस्कृति और मात्र भारतीय संस्कृति ही विश्व को अन्धकार से प्रकाश, युद्ध से शान्ति की ओर ले जाने का सामर्थ्य रखती है तभी ऋग्वैद में लिखा कि **'तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतंगमय'** भारतीय संस्कृति उन शाश्वत मूल्यों पर टिकी है, जो मानवता के पक्षधर हैं यथा करूणा, अहिंसा, अस्तेय, अनेकान्तवाद, त्याग, संवदेनशीलता, कर्तव्य परायणता आदि।

ये वे मूल्य हैं जिन्हें हम पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित नहीं कर सकते हैं। ये वे गुण हैं जिन्हें व्यक्ति आचरण में ढालकर व्यवहार से आदर्श प्रस्तुत कर पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित करते हैं। दधिचि ऋषि की करूणा, अभिमन्यु का दान, राम की पितृ भक्ति, भरत का भ्राता प्रेम, हनुमान की निष्काम सेवा भक्ति एवं ऐसे ही अनेक उदाहरणों से हमारा इतिहास भरा पड़ा है। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति -व्यक्ति के मध्य मधुर सम्बन्धों के साथ साथ पशु-पक्षियों, पैड़-पौधों तक को भी महत्व प्रदान किया गया है उनके लिये पूजा अर्चना का प्रावधान रखा गया है। क्या किसी अन्य संस्कृति में हम प्रकृति के प्रति मानवीय संवेदना को देख सकते हैं?

भारतीय संस्कृति की श्रमण परम्परा में तो अहिंसा व अनेकान्तवाद को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है। प्राणी मात्र के प्रति करूणा व मैत्री का भाव व उनके प्रति हिंसा से बचने के लिये पग-पग पर विवेक व सावधानियां रखने के निर्देश हैं।

वर्तमान में विश्व शान्ति को सर्वाधिक खतरा वैचारिक साम्राज्यवाद का है। गत शताब्दी तक तो युद्ध के कारण साम्राज्य विस्तार व प्रजातिय श्रेष्टता-हीनता बोध रहे हैं। हिटलर की मान्यता थी कि कॉकेसोइड प्रजाति को ही विश्व में राज्य करने का अधिकार है। इसी मान्यता ने द्वितीय विश्व युद्ध को जन्म दिया। परन्तु अब विकसित राष्ट्र विकास शील व अर्द्धविकसित राष्ट्रों में आर्थिक अनुदान आदि प्रदान कर वैचारिक साम्राज्यवाद Ideological emperialism स्थापित करना चाहते हैं। पूंजीवाद बनाम साम्यवाद जैसी दो विपरीत विचारधाराएं गत शताब्दी में प्रमुख रही है। आज विचार धारा की टकराहट वर्चस्व की टकराहट एवं संघर्ष का रूप ले सकती है। अतः शान्ति के लिये आज अनेकान्तवाद की विचार धारा

का अपना विशेष महत्व है। अनेकान्तवाद दूसरों के दृष्टि कोण को नकारना नहीं है। यह दार्शनिक विचार धारा यह भी मान कर चलती है कि दूसरों का दृष्टि कोण भी सापेक्ष भाव से सही हो सकता है। जहां विचारों की टकराहट नहीं हो, जहां दूसरों के विचारों के प्रति सदाशयता हो वहां शान्ति की स्थिति अवश्य ही रहेगी। आज परिवार में भी विघटन का प्रमुख कारण वैचारिक टकराहट है, यदि वैचारिक भिन्नता के प्रति सहन शक्ति व सहिष्णुता हो तो कोई कारण नहीं कि पारिवारिक विघटन जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो।

इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति में समाज में एकीकरण लाने की अभूतपूर्व क्षमता है। यही कारण है कि सामाजिक संस्थाएं-यथा-परिवार, जातिय संरचना, ग्रामीण संरचना की विभिन्न इकाइयों में भेद होते हुए भी सहयोग की स्थितियां बनी रही। भारतीय संस्कृति ही एसी मौलिक संस्कृति है जिसमें विश्व बन्धुत्व की भावना नीहित है। यहीं पर हमने वसुधैव कुटम्बकम् की कल्पना की। हमारी संस्कृति में आदर्श व यथार्थ के मध्य अन्तर नहीं है। इसीलिये भारतीय सामाजिक संरचना का आधार सहयोग, सहकार, प्रेम व त्याग रहा है।

अहिंसा का अर्थशास्त्र और विश्व–शान्ति

– डॉ. दिलीप धींग

साधन–साध्य की शुचिता :-

आगम का अर्थतन्त्र अहिंसा का अर्थतन्त्र है। वह संयम से अनुप्राणित और अनेकान्त से अनुवेश्टित है। अपरिग्रह उसकी आधारशिला है। वह इतना मानवीय है कि मानव तो क्या, मानवेत्तर प्राणियों के प्रति भी उसकी पूरी संवेदना है। समाजशास्त्र की भाँति अर्थशास्त्र की मुख्य इकाई व्यक्ति है, जिसे आधुनिक अर्थशास्त्र में उपभोक्ता नाम दिया गया है। आगमिक अर्थशास्त्र का सबसे बड़ा तथ्य व्यक्ति का परिष्कार और साधन-शुद्धि है। व्यक्ति के अन्तर्गत उत्पादक, व्यापारी और उपभोक्ता तीनों आ जाते हैं। उत्पादक और व्यापारी भी उपभोक्ता होते हैं। परन्तु उत्पादक और व्यापारी अथवा वितरक के रूप में उनकी प्रामाणिक भूमिका की अपेक्षा रहती है। इसलिए व्यक्ति शुद्धि के साथ साधन-शुद्धि स्वतः जुड़ी हुई है। उत्पादन के सम्बन्ध में भ. महावीर के तीन सूत्र महत्वपूर्ण है –

1. **अहिंसप्पयाणे** : हिंसक शस्त्रों का निर्माण नहीं करना।
2. **असंजुत्ताहिकरणे** : हथियारों का संयोजन नहीं करना।
3. **अपावकम्मोवदेसे** : पापकर्म की, हिंसा की शिक्षा नहीं देना।

हथियार भय और हिंसा के अर्थतन्त्र का यार होता है। विश्व में प्रति मिनिट 8 करोड़ 40 लाख रुपये हथियारों के उत्पादन पर यानि हिंसा पर खर्च किये जा रहे हैं। हिंसा पर हो रहे खर्च को विकास के सन्दर्भों में देखें तो चौंकाने वाले तथ्य हमारे सामने होंगे –

- विश्व के सभी देश एक दिन में अपनी फौजों पर जितना खर्च करते हैं, उतने के उपयोग से धरती को पूरी तरह मलेरिया-मुक्त किया जा सकता है।
- यदि एक टेंक न बनाया जाय तो उससे होने वाली बचत से 8 दिन तक एक लाख लोगों का पेट भरा जा सकता है।
- एक टेंक की कीमत से 30 हजार बच्चों के लिए 500 विद्यालय खोले जा सकते हैं।

- एक लड़ाकू विमान के मूल्य से 40 हजार गाँवों को स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा सकती है।
- एक परमाणु पनडुब्बी की कीमत में 23 विकासशील देशों के 1 करोड़ 60 लाख बच्चों को सुनियोजित शिक्षा दी जा सकती है।

विश्व-राजनीति में अहिंसा की दिशा में आगे बढ़ने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की निष्पक्ष भूमिका की अपेक्षा है। दुनिया की खुशहाली के लिए निम्न बिन्दु विचारणीय है-

- राजनीतिक उपनिवेश की पूर्ण समाप्ति। स्वतन्त्रता और समानता की हवा में सबका सर्वांगीण विकास।
- 'आर्थिक और सांस्कृतिक उपनिवेश' की कूटनीति से बचते हुए देशों के बीच आर्थिक व सांस्कृतिक सहयोग बढ़ाना।
- जाति, नस्ल, रंग आदि के आधार पर मानव-मानव में भेद नहीं करना।
- परमाणु परीक्षणों पर रोक। परमाणु हथियारों को नष्ट करना या परमाणु शक्ति का शान्तिपूर्ण उपयोग करना।
- अनाक्रमण का संकल्प। लड़ने, लड़ाने और भिड़ाने वालों पर संयुक्त राष्ट्र संघ निगरानी और नियन्त्रण रखें।
- मानवाधिकारों के साथ-साथ धरती के अन्य जीवधारियों के अधिकारों की चर्चाएँ भी विश्व-मंच पर की जाय। यान्त्रिक बूचड़खानों को कम से कम करना। दुनिया में शाकाहार के पक्ष में महौल बन रहा है। मनुष्येत्तर प्राणियों के प्रति करुणा का भाव पैदा हो रहा है। दुनिया की आर्थिक भलाई के लिए यह सब आवश्यक है।
- हथियारों के उत्पादन और व्यापार पर अंकुश लगे। आतंकवाद के कारणों को खोजें और उसे समूल नष्ट करने के लिए सभी देश सहमति दें।
- पर्यावरण की रक्षा के लिए सभी देश निर्धारित मापदण्डों का पालन करे।

राजनीतिक इच्छा शक्ति के साथ-साथ इन नियमों के पालन के लिए नागरिकों की जीवन शैली में परिवर्तन भी वांछनीय है। इसके लिए नागरिक आचार संहिता और प्रचार माध्यमों की भूमिका से जन-जागरण आवश्यक है।

शिक्षा और स्वास्थ्य :-

व्यक्ति-शुद्धि के लिए शिक्षा को बहुत बड़ा निमित्त माना गया है। भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति का उद्देश्य था चरित्र का संगठन, व्यक्तित्व का निर्माण, संस्कृति की रक्षा तथा सामाजिक और धार्मिक कर्त्तव्यों को सम्पन्न करने के लिए उदीयमान पीढ़ी का प्रशिक्षण। परन्तु अब तो ऐसा लगता है कि शिक्षा-प्राप्ति का उद्देश्य अधिकाधिक पैसा कमाने के अलावा कुछ है ही नहीं। स्वयं शिक्षा एक बहुत बड़ा व्यवसाय बन गई है। शिक्षा का व्यवसायीकरण आधुनिक अर्थशास्त्र की विडम्बना है। आधुनिक अर्थतन्त्र में शिक्षा और स्वास्थ्य के नाम पर भी लाखों -करोड़ों और अरबों-खरबों के वारे-न्यारे हो रहे हैं। साधारण व्यक्ति के लिए अच्छी न्यूनतम शिक्षा भी दूभर हो गई है और चिकित्सा की तो पूछिये ही मत! वह निम्न वर्ग के लिए असम्भव जैसी और मध्यवर्गीय व्यक्ति के लिए कमरतोड़ महंगी है। बड़ी बीमारियों का इलाज तो मध्यवर्गीय व्यक्ति के लिए भी असम्भव जैसा ही लगता है। इतना होने के बावजूद मानव स्वास्थ्य के साथ खुल्लम-खुल्ला खिलवाड़ किया जा रहा है।

दवा- उद्योग का निदर्शन :-

इस समय भारतीय दवा बाजार में करीब 60000 दवाइयाँ हैं, जिनमें से सिर्फ 250 दवाइयाँ हमारे काम की है। शेष 59750 दवाइयाँ एकदम बेकार हैं। इन दवाओं को बेचकर ये कम्पनियाँ 800 प्रतिशत तक मुनाफा कमा रही है। एक-एक दवा बाजार में 40 से अधिक नामों से बिक रही है। 90 प्रतिशत ऐसे टॉनिक बनाकर बेचे जा रहे हैं, जो मानव शरीर के लिए बिलकुल अनुपयोगी हैं। भारत के इस दवा उद्योग के करीब 90 प्रतिशत हिस्से पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कब्जा है। जिनके जरिये करोड़ों रुपये प्रतिवर्ष बाहर चला जाता है। यह सारा कारोबार उन्हीं चिकित्सकों और चिकित्सा-कर्मियों के आसरे फलफूल रहा है, जिन्होंने सेवा के संकल्प के साथ शिक्षा ग्रहण की थी। इन सब तथ्यों के अलावा लगभग पूरा दवा उद्योग एलोपैथी पर अवलम्बित है और एलोपैथी अहिंसक और निरापद नहीं है। उसकी हर दवा के साइड-इफेक्ट्स हैं। एलोपैथी और हिंसा के अर्थतन्त्र का एक ही स्वभाव हैं। उसमें तुरन्त उपचार तो है, परन्तु आगे अनेक बीमारियों के रास्ते खुल जाते हैं। इसी प्रकार हिंसा पर टिका अर्थतन्त्र तुरन्त सुखद और निरापद प्रतीत होता है। परन्तु कुछ अर्से बाद उसके अभिशाप प्रकट होने

लगते हैं। चिकित्सा-जगत् आधुनिक अर्थतन्त्र के चरित्र का एक उदाहरण मात्र है। आज हर क्षेत्र में लोभ-लिप्सा और आपाधापी मची है। आगमिक जीवन शैली निसर्गतः स्वास्थ्य की रक्षक है, इसलिए वह सुख, शान्ति और समृद्धि की हेतु भी है।

विकास की विद्रूपताएँ :-

जैन आगम ग्रन्थों में कृषि और आत्म-निर्भर ग्राम-तन्त्र अर्थव्यवस्था के आधार थे। समय के साथ परिस्थितियों में आमूलचूल बदलाव हुए। व्यवस्थाओं में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए या किये गये। समय बदलता है, मूल्य नहीं। मनुष्य ने अपने तात्कालिक स्वार्थ के लिए त्रैकालिक मूल्यों की उपेक्षा करते हुए विकास के ऐसे तरीकें ईजाद कर लिये, जिनमें सर्वोदय के सारे सपने चूर-चूर होने लगे। सन् 1979 से 2004 की 25 वर्षों की अवधि में भारत में कृषि क्षेत्र में लगे लोगों की संख्या 64 प्रतिशत से घट कर 54 प्रतिशत रह गई। देश में करीब 3.6 करोड़ युवा बेरोजगार हैं और करोड़ों जैसे-तैसे अपना काम चला रहे हैं। स्वतन्त्रता के समय 1947 में देश की जितनी आबादी थी, उतने यानि करीब 35 करोड़ लोग आजादी के करीब छः दशक बाद भी आज भूखे सोने पर मजबूर है। विश्व में यह संख्या 80 करोड़ बताई जाती है, जिसमें 30 करोड़ बच्चे होते हैं। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार प्रति 3.6 सैकिण्ड में विश्व में एक व्यक्ति की भूख के कारण मौत हो जाती है। जिसमें पाँच वर्ष की उम्र से कम के बच्चों की संख्या अधिक होती है। आज के समय में खाद्यान्न की कमी भूखमरी का मुख्य कारण नहीं है। इसका मुख्य कारण है समाज के एक वर्ग के पास विनिमय अधिकारिता (Entitlement) का अभाव तथा दूसरा कारण है कमजोर व असमान वितरण व्यवस्था। अपरिग्रह के सिद्धान्त में स्वत्त्व (Entitlement) और स्वामित्त्व (Ownership) का विसर्जन तथा संविभाग (सम+विभाग) मुख्य तथ्य हैं, जो भुखमरी, अल्प-पोषण और कुपोषण की समस्याओं का मूलोच्छेदन करने में सक्षम हैं।

तेज आर्थिक रफ्तार और क्रान्तिकारी तकनीकी विकास के बीच करोड़ों लोगों को पर्याप्त भोजन नहीं मिलना ओर करोड़ों लोगों का बरोजगार रहना या अर्द्ध-रोजगार पर निर्भर रहना सबके लिए चिन्ता और चिन्तन का विषय है। यह केन्द्रित अर्थव्यवस्था का परिणाम है। जन सामान्य की उपेक्षा करके की गई उन्नति अन्ततः

अवनति में परिवर्तित हो जाती है। ऐसे संकटापन्न समय में पुनः कृषि और ग्राम विकास पर जोर दिये जाने की जरूरत है। बेतहाशा बढ़ रहे शहरीकरण व औद्योगिकीकरण को रोकने के लिए ग्राम-तन्त्र को मजबूत बनाना और तकनीकी विकास को ग्राम, ग्राम-तन्त्र और कृषि से जोड़ना आवश्यक है। भगवान महावीर का अहिंसा और समता का सिद्धान्त विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना करता है। वह सह-अस्तित्व पर आधारित है। उसमें सबका हित सन्निहित है।

ऐसा लगता है जैसे मानव एक इकाई विकास करता है तो दो या दो से अधिक इकाई विनाश! पर्यावरण, समता समाज-रचना और मानवीय-मूल्यों की दृष्टि से देखा जाय तो वर्तमान की विकास की अवधारणा अत्यन्त महंगी, खर्चीली और घाटे का सौदा ही सिद्ध हुई है। पूरे संसार में हिंसा और असंयम के दुःख फैले हुए हैं। एक तरफ गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ हैं, दूसरी ओर दुर्गन्धयुक्त कच्ची बस्तियाँ हैं। गरीबी-अमीरी तोहर कालखण्ड में रही है, परन्तु मानव-बस्तियों की ऐसी विद्रूपताएँ सम्भवतः पहले कभी नहीं थी। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, पर्यावरण प्रदूषण से अनेक दूसरी समस्याएँ खड़ी हुई हैं। बढ़ती आबादी, उग्रवाद, आतंकवाद जैसी समस्याएँ दुनिया के अमन चैन में बाधक बनी हुई हैं। जिनके समाधान के लिए विचार-विमर्श तो खूब हो रहा है, परन्तु समस्याओं के मूल तक जाने के लिए कोई तैयार नहीं अथवा बुनियादी तरीकों से समस्याओं का समाधान नहीं किया जा रहा है।

शान्ति के सम्मेलनों से, कष्ट माँ के ना कटेंगे।
अहिंसा की हवाओं से, प्रलय के बादल छँटेंगे।।

तुलना और निष्पत्ति :-

आगमों में वर्णित जीवन-शैली मानव, मानवता और दुनिया को बचाने के लिए बुनियादी समाधान प्रस्तुत करती हैं। वह एक मानवीय अर्थशास्त्र प्रस्तुत करती है, जो पूंजीवाद और समाजवाद, दोनों ही के दोषों से मुक्त है। पूंजीवादी, साम्यवादी और मानवीय या अहिंसा के अर्थशास्त्र में मौलिक अन्तर है, जिसे निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा रहा है -

(1) **दर्शन :** पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों भौतिकवाद पर खड़े हैं। जबकि अहिंसा का अर्थशास्त्र एकीकृत मानवीयता पर आधारित है।

(2) **उद्देश्य:** पूंजीवाद में वैयक्तिक अमीरी बढ़ती है और साम्यवाद में राज्य की शक्ति, जबकि अहिंसा के अर्थशास्त्र में पुरुषार्थ चतुष्टय की सन्तुलित साधना की जाती है।

(3) **मानव का स्वरूप:** पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों मानव को आर्थिक प्राणी मानते हैं। अहिंसा का अर्थशास्त्र मानव को महज आर्थिक प्राणी नहीं मानता, अपितु उसे शरीर, बुद्धि, मन और आत्मा की अनन्त सम्भावनाओं की इकाई मानता है।

(4) **जीवन शैली :** पूंजीवाद में विलासिता का जीवन है और साम्यवाद में यन्त्रवत् जीवन, जबकि अहिंसा के अर्थशास्त्र में नैसर्गिक, आध्यात्मिक और मानवीय जीवन है।

(5) **गतिविधियाँ और नियन्त्रण :** पूंजीवाद में असीमित आजादी है और साम्यवाद में राज्य सभी स्वतन्त्रताओं को छीन लेना चाहता है। जबकि अहिंसा के अर्थशास्त्र में आत्मानुशासन है, इसलिए सहज स्वतन्त्रता है।

(6) **सम्पत्ति स्वामित्व :** पूंजीवाद में असीमित स्वामित्व है और साम्यवाद में व्यक्तिगत स्वामित्व का अभाव है। अहिंसा के अर्थशास्त्र में आवश्यक स्वामित्व स्वीकार्य है। अपरिग्रह अथवा न्यास-सिद्धान्त स्वामित्व को नियमित करता है।

(7) **कार्य-प्रणाली :** पूंजीवाद शोषण पर आधारित है और साम्यवाद में राज्य व्यक्ति की योग्यताओं का धीमा/अदृश्य शोषण करता है। अहिंसा का अर्थशास्त्र संयम और त्याग पर अवस्थित है।

(8) **प्रकृति :** पूंजीवाद में व्यक्तिवाद है और साम्यवाद में राज्य का अवांछनीय नियन्त्रण; जबकि अहिंसा के अर्थशास्त्र में सह-अस्तित्व और सामाजिकता की भावना है।

(9) **ढंग :** पूंजीवाद में अनावश्यक स्पर्धा और होड़ा-होड़ी है और साम्यवाद में राज्य की शक्ति का कठोर अंकुश है। अहिंसा के अर्थशास्त्र में सहकारिता है।

(10) **शासन:** पूंजीवाद में बहुदलीय प्रजाजन्त्र और साम्यवाद में एकतन्त्रवाद है। अहिंसा के अर्थशास्त्र में कर्तव्य आधारित शासन है।

(11) **श्रम का फल :** पूंजीवाद में पूंजीपति अधिकांश हड़प जाते हैं और साम्यवाद में राज्य सर्वशक्तिमान होता है। अहिंसा का अर्थशास्त्र सामाजिकता की भावना और सम-वितरण पर आधारित है।

(12) **रोजगार :** पूंजीवाद में रोजगार प्रस्थिति और रिक्तता पर निर्भर है और साम्यवाद में वह राज्य के हाथों में होता है। अहिंसा का अर्थशास्त्र योग्यता को प्रधानता देता है।

(13) **विचार प्रक्रिया :** पूंजीवाद और साम्यवाद में स्वतन्त्र वैचारिकता का हनन है, जबकि अहिंसा का अर्थशास्त्र अनेकान्त को महत्व देता है।

इस प्रकार अहिंसा का अर्थशास्त्र पूंजीवाद और साम्यवाद के दोषों का निराकरण करता है। जैन आगम ग्रन्थों में वर्णित आचार-दर्शन और सिद्धान्त अर्थशास्त्रीय महत्व के निम्न बिन्दुओं पर बल देते हैं–

* अहिंसा, शाकाहार, संयम, सादगी और मितव्ययिता।
* अपरिग्रह, असंग्रह, अनासक्ति और त्याग।
* वैचारिक सहिष्णुता और विश्व-शान्ति के लिए अनेकान्त का दृष्टिकोण।
* स्वावलम्बन, पुरुषार्थ और कर्त्तव्यपरायणता।
* सह-अस्तित्वपूर्ण व्यवस्था।
* प्रकृति और संस्कृति का संरक्षण।
* सामाजिक व मानवीय एकता।
* पारस्परिक अनुग्रह और सहयोग भाव।
* संसार को बाजार नहीं, परिवार मानना।
* साधन व साध्य की शुचिता पर बल।
* व्यवसाय में प्रमाणिकता और ईमानदारी।
* विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था।
* केन्द्र में अर्थ नहीं; मनुष्य होता है।

आज विज्ञान और प्रोद्योगिकी के विकास ने मानव सभ्यता और संस्कृति के अभिनव द्वार खोल दिये हैं। संचार क्रान्ति ने तो मनुष्य की जीवन चर्या और विश्व की व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन कर दिये हैं। उसके पास सुख के साधन तो

प्रचुर हैं, परन्तु शान्ति की साधनाएँ कम। वह एक जैविक इकाई है और उसकी मूलभूत नैसर्गिक आवश्यकताएँ हैं। वह एक सामाजिक प्राणी है और उसकी सामाजिक आवश्यकताएँ भी हैं। अर्थशास्त्र मनुश्य की आवश्यकताओं को पूरा करने की विधियों और प्रविधियों का शास्त्र है। परन्तु उसकी अन्तहीन और गैर-वाजिब इच्छाओं ने अर्थशास्त्र को अनर्थकारी संहारक शस्त्र की भाँति बना दिया है। आगमिक जीवन शैली अर्थशास्त्र को शान्ति और समृद्धि का शास्त्र बनाती है। अहिंसा का अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र के साथ संयोजित है। वह जीवन और जीवन की गुणवत्ता का समादर करता है। विश्व की स्थायी उन्नति और सुख-शान्ति के लिए अहिंसा के अर्थशास्त्र का कोई विकल्प नहीं है। भगवान महावीर के ये शब्द आज अधिक प्रासंगिक हो गये है–'अत्थि सत्थं परेण परं, नत्थि असत्थं परेण परं।' अर्थात् शस्त्र (हिंसा) तो एक-से-एक बढ़कर हैं। परन्तु, अशस्त्र (अहिंसा) से बढ़कर कुछ नहीं है।

भारतीय संस्कृति में निहित पर्यावरण सुरक्षा

– सोहन लाल देवड़ा

भारत अनादिकाल से आध्यात्मिक देश रहा है एक समय था जब भारत को विश्व गुरु, सोने की चिड़िया, घी, दूध की नदी बहने वाला देश कहा जाता था। भारत में जन्म लेने वाले तीर्थंकर, बुद्ध, ऋषि, मुनि आदि आध्यात्मिक वैज्ञानिकों ने अनन्त ज्ञान से संसार के सभी तत्वों के सभी रहस्यों को विश्व के समक्ष रखा। भारत ने विश्व को ज्ञान-विज्ञान, गणित, अहिंसा, विश्व शान्ति, पर्यावरण सुरक्षा, समाज व्यवस्था आदि सिद्धान्त सूत्र देकर विश्व का भरण पोषण किया।

भारतीय परम्परा में अखिल जीव जगत् एवं सम्पूर्ण प्रकृति की सुरक्षा-समृद्धि सबसे महत्वपूर्ण अंग है।

पर्यावरण सुरक्षा के लिए उत्तम तरीका है- भावशुद्धि। अभी तक वैज्ञानिक और पर्यावरण विद्वानों द्वारा जल, मृदा, वायु, ध्वनि आदि को प्रदूषण मानकर पर्यावरण सुरक्षा के उपाय का प्रतिपादन किया है, परन्तु भारतीय महान आध्यात्मिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित भावात्मक प्रदूषण तथा उससे प्रभावित होने वाले समस्त प्रदूषण एवं पर्यावरण सुरक्षा के उपाय स्थाई एवं शाश्वतिक है। पर्यावरण सुरक्षा के लिए कुछ तरीके काम में लाये जा रहे हैं, तथा लाये जा सकते है। आचार्य श्री कनक नंदी जी गुरु देव द्वारा रचित पुस्तक ''विज्ञान को भी अविज्ञात सत्य'' के कुछ अंश के आधार पर मैं अपने विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ।

1. आध्यात्मिक पर्यावरण :–

अहिंसा को पर्यावरण का संरक्षण ''अहिंसा परम सुखम्'' ''जीयो और जीने दो'' जैन धर्म के अनुसार जीवों की सुरक्षा ही परम धर्म है, अनादि काल से भारतीय परम्परा में तो वृक्ष, पर्वत, नदी, अग्नि, सूर्य, पृथ्वी आदि की पूजा की जाती है, इसका मूल कारण इनकी सुरक्षा है। जैन मुनि समस्त प्रकार की हिंसा के मन, वचन, काय से त्यागी होते हैं।

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति, एकेन्द्रिय स्थावर एवं द्विइन्द्रिय, लट, त्रिइन्द्रिय चींटी चतुरिन्द्रिय मक्खी, पंचेन्द्रिय मनुष्य पशु, पक्षी आदि त्रस आदि जीवों को कष्ट नहीं पहुँचाना अहिंसा है। हिंसा के कार्य जैसे वृक्ष का उखाडना, भूमि

को खोदना, घास पत्ते तोड़ना, पानी ढोलना, आदि कार्य बिना प्रयोजन नहीं करना चाहिए। मानव विचार शील प्राणी होने के बावजूद भी राग, द्वेष क्रोध, मान, माया लोभ, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि के द्वारा अपने मन को मलीन कर मानसिक अशान्ति का कारण स्वयं बनता है, जिससे कई प्रकार की शारीरिक और मानसिक बिमारीयों को आमन्त्रित करता है।

बूचड़ खानों में प्रतिदिन हजारों जानवरों को काटा जाता है जिससे प्रकृति में प्रतिक्रिया रूप से भूकंप, अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि स्थिति पैदा होती है। प्रकृति ने पर्यावरण की दृष्टि से मनुष्य के लिए (शाकाहारी प्राणी को) जो भोजन में मिलना चाहिए सभी तत्व भरपूर मात्रा में उपलब्ध कराये है, फिर भी मनुष्य मांसाहारी बनकर पर्यावरण को दूषित कर रहा है।

2. समिति से पर्यावरण की सुरक्षा :-

जैन साधु पूर्णतया समिति का पालन करते है, सावधानी पूर्वक जीवों की सुरक्षा करना समिति है।

समिति के 5 प्रकार है- (1) ईर्या समिति (2) भाषा समिति (3) एषणा समिति (4) आदान निक्षेपण समिति (5) उत्सर्ग समिति।

(1) ईर्या समिति में सूर्य के प्रकाश में जीवों की दया पूर्वक रक्षा करते हुए चलने का विधान है।

(2) भाषा समिति में हित-मित-प्रिय वचन बोलना जिससे शब्द प्रदूषण (कलह) नहीं होता।

(3) एषणा समिति में शुद्ध सात्विक, शाकाहार फलाहार दूग्धाहार होता है जिससे जीवों की हिंसा नहीं होती और शारीरिक और मानसिक रोग भी नहीं होता।

(4) आदान निक्षेपण समिति में हर वस्तु को देखकर उठाना, रखना, प्रयोग करना, जीवों की रक्षा करना आदि।

(5) उत्सर्ग समिति में जीव जन्तु से रहित एकान्त स्थान, ग्राम, नगर, रास्ता आदि से दूर स्थान में मल-मूत्र, गन्दगी आदि का विसर्जन करना इससे ग्राम आदि में प्रदूषण, जीवाणू नहीं फैलते इससे पर्यावरण की स्वच्छता रहती है।

(3) अपरिग्रह से पर्यावरण का संरक्षण :-

SIMPLE LIVING AND HIGH THINKING **''सादा जीवन**

एवं उच्च विचार'' भारत देश की महान परम्परा है, इससे व्यक्ति का व्यक्तित्व महान, पवित्र, उदार तो बनता ही है, उसके साथ-साथ पर्यावरण सुरक्षा में भी महान योगदान मीलता है। उच्च विचार के कारण वह किसी भी जीव को और विश्व के किसी वस्तु को नुकसान नहीं पहुँचाता है।

बाहरी दिखावा और विलाशिता तथा समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाने की होड़ में वह अधिक धन सम्पति की चाह में दूसरों का शोषण पर्यावरण का दोहन तथा वनस्पति, जल, खनिज आदि को नुकसान पहुँचाता है, जिससे प्रकृति का संतुलन बिगड़ता है। फैक्ट्री के धूँए, गन्दा मलवा, आदि द्वारा वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और मिट्टी (मृदा) प्रदूषण होता है। इसलिये भारतीय परम्परा में गृहस्थ लोग सीमित परिग्रह (अपरिग्रह अणुव्रत) रखते है तथा साधु सन्त परिग्रह त्याग कर देते है। दिगम्बर साधु तो अन्य परिग्रह के साथ-साथ वस्त्र का भी त्याग करते है।

(4) व्यसन मुक्ति से पर्यावरण संरक्षण :-

नैतिकपूर्ण स्वस्थ और सादा जीवन जीने के लिए (सप्तव्यसन) मदिरा, माँस, शिकार, चोरी, जुआ, वेश्या गमन, पर स्त्री सेवन, आदि का त्याग भारत में जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है।

मदिरा सेवन से भाव प्रदूषण होता है।

मदिरा तैयार करने में जल, वायु, वनस्पति आदि प्रदूषित होते है। मांस भक्षण से जीवों की हत्या होती है, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य खराब होता है। जलचर जीवों की हत्या से जल प्रदूषण, पक्षी की हत्या से वायु प्रदूषण और स्थल चर जीवों की हत्या से स्थल प्रदूषण बढता है। शिकार व्यसन में भी माँस भक्षण की तरह सभी दोष पाये जाते हैं।

पर स्त्री गमन, वैश्यागमन से शारीरिक एवं मानसिक रोग के साथ सामाजिक प्रदूषण होता है। इसी प्रकार चोरी, जुआ, आदि से भी मानसिक आर्थिक, और सामाजिक प्रदूषण फैलता है।

तम्बाखू, बिड़ी, गॉजा, भांग, सिगरेट, अफीम आदि से आर्थिक, शारीरिक, मानसिक और वायु प्रदूषण होता है।

(5) ब्रह्मचर्य से पर्यावरण संरक्षण :-

ब्रह्मचर्य का भारतीय संस्कृति में महत्व पूर्ण स्थान है, ब्रह्मचर्य से जन संख्या वृद्धि पर नियंत्रण रक्खा जा सकता है, जिससे खाद्य समस्या, आवास निवास समस्या, के साथ-साथ मनुष्य द्वारा उत्सर्जित मल-मूत्र अपशिष्ट आदि पदार्थो से जल वायु मिट्टी प्रदूषण होता है।

घनी आबादी के कारण प्राण वायु की कमी होती है, तथा कृत्रिम गर्मी बढने से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता है। पर्यावरण संरक्षण के लिए ब्रह्मचर्य का पालन जरूरी है।

मेरे शोध पत्र का संक्षेप सार। निष्कर्ष यही है कि पर्यावरण की चर्चा के साथ अहिंसादिव्रत, समिति, गुप्ति, जीव दया, संयम, समता, ऋजुता, मृदुता आदि उत्कृष्ट भावों का होना परम अनिवार्य है।

आज से लाखों वर्ष पहले हमारे तीर्थंकर, ऋषि, मुनि, प्रज्ञा पुरुषों ने आचार-विचार व्यवहार में संयम, करूणा, जीव दया इत्यादि प्रमुख नियमों पर बल दिया था, इसी बात को आचार्य महाप्रज्ञ जी ने अपनी पुस्तक ''जैन धर्म अर्हत् और अर्हताये'' में एक स्थान पर स्पष्ट किया है कि सृष्टि-संतुलन शास्त्र आधुनिक विज्ञान के लिए विज्ञान की एक नई शाखा हो सकती है लेकिन एक जैन के लिए यह सिद्धान्त लाखों वर्ष पुराना है। सृष्टि संतुलन के लिए भगवान आदिनाथ से लेकर भगवान महावीर ने जो सृष्टि संतुलन का सूत्र दिया वह आज भी महत्वपूर्ण है। अगर हम उनके बताये सिद्धान्त सूत्रो का अनुकरण, अनुसरण करे तो विश्व व्यापी पर्यावरण की विकराल समस्या ही नहीं वरन् अन्य अनेक समस्याओं का समाधान हो जायेगा। हमारा समाज, राष्ट्र विश्व भगवान महावीर के सिद्धान्त सूत्रो पर चल कर ही समृद्ध, समुन्नत बन सकता है।

भारतीय संस्कृति में निहित पर्यावरण सुरक्षा

– कनकमल हाडोतिया

प्राचीन समय में पर्यावरण सुरक्षा की बात ही नहीं करते थे क्योंकि पर्यावरण सुरक्षित था। वर्तमान में पर्यावरण बिगड़ता जा रहा इसलिये सुरक्षा की बात करने लगे हैं। सभी सुरक्षा तो चाहते हैं पर पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिये जागरुक नहीं है।

यदि हम भारतीय संस्कृति के अनुसार चले तो पर्यावरण की सुरक्षा हो सकती है। हम हमारी संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने लगे है इसीलिये पर्यावरण बिगड़ता चला जा रहा है।

पर्यावरण शब्द परि+आवरण से बना है। अतः हम अपने चारों ओर जो भी देखते है या जो भी हमें चारों ओर से घेरे हुए है वह हमारा पर्यावरण है। पर्यावरण मानव के प्रत्येक क्रिया कलाप को प्रभावित करता है। साथ ही मानव ने भी अपनी सूझबूझ एवं बुद्धिमता से पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास किया है। पर्यावरण को 3 मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) प्राकृतिक या भौतिक पर्यावरण (Natural or Physical Environment) (2) सांस्कृतिक पर्यावरण (Cultural Environment) (3) आध्यात्मिक पर्यावरण (Spiritual Environment)

1– भौतिक पर्यावरण :-

इसमें स्थलमण्डल, जलमण्डल और वायुमण्डल आते हैं। स्थलमण्डल में शैलें (Rocks) मिट्टियाँ (Soils), पर्वत, पठार, मैदान आदि आते है।

जलमण्डल में समुद्र, तालाब, आदि आते हैं। समुद्र की गतियें भी मानव जीवन को बहुत प्रभावित करती है। गतियों में मुख्य लहरें, धाराएँ, ज्वार भाटा आदि आते हैं।

वायुमण्डल में विभिन्न प्रकार की गैसें आती है-

इसी भूतल से ऊँचाई के अनुसार वायुमण्डल की परतें (Layers of Atmosphere) पाई जाती है। नीचे से ऊपर के क्रम में क्षोभमण्डल, समतापमण्डल, ओजोन मण्डल, मध्य मण्डल, आयन मण्डल, बाह्यमण्डल आदि।

सौर्यताप (Insolation)- प्रत्येक प्राणी के लिये सूर्यताप की पूर्ण आवश्यकता है।

जैवमण्डल (Biosphere)-जैवमण्डल से तात्पर्य पर्यावरण के उस भाग से है जहाँ जीवन सम्भव है। पर्यावरण के तीन अन्य परिमण्डल-अर्थात स्थल मण्डल, जलमण्डल तथा वायुमण्डल जहाँ मिलते हैं वहीं जैवमण्डल स्थित है। इन मण्डलों में ऐसे क्षेत्र बहुत सीमित है जहाँ जीवन सम्भव है। जीवों के उत्पन्न होने, जीवित रहने तथा वृद्धि करने के लिये स्वच्छवायु जल भोजन, उत्पयुक्त तापमान तथा प्रकाश की आवश्यकता होती है। इस प्रकार जैव जगत के विकास, पोषण एवं अभिवर्द्धन के लिये अजैविक कारक जैसे- वायु, जल, मृदा, खनिज, सौर विकिरण आदि का योगदान होता है।

पारिस्थितिकी तंत्र-

जैविक व अजैविक वर्ग के सभी घटक एक दूसरे के साथ अन्तर्किया करते है जिससे अन्तर्सम्बन्धों से युक्त एक व्यवस्था विकसित होती है। जैविक एवं अजैविक घटकों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों की इस व्यवस्था को ही पारिस्थितिकी तन्त्र कहते है। छोटा सा तालाब, झील, समुद्र, घास का मैदान, वन प्रदेश आदि पारिस्थितिकी तंत्र के छोटे-बड़े उदाहरण है।

मानवीय हस्तक्षेप एवं पारिस्थितिकी तंत्र :-

मानव ने अपनी बुद्धि एवं कौशल के कारण पर्यावरण में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। वस्तुतः सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण मानव की बुद्धि एवं तकनीकी कौशल का ही उदाहरण है। इस रूप में प्राकृतिक एवं अजैविक पर्यावरण ने मानव को बहुत कुछ दिया है लेकिन जहाँ कहीं उसने अवांछनीय हस्तक्षेप किया है वहीं अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई है। पर्यावरण असन्तुलन एवं पर्यावरण प्रदूषण उसी का परिणाम है।

प्रदूषण का अर्थ :-

प्रदूषण एक ऐसी अवांछित परिस्थिति है जिसके अन्तर्गत भौतिक रासायनिक एवं जैविक प्रक्रियाओं के कारण ऐसे परिवर्तन हो जाते है कि थलमण्डल जलमण्डल तथा वायुमण्डल की गुणवता का ह्रास होता है। इसके फलस्वरूप मानव, प्राणी वर्ग एवं वनस्पति वर्ग पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे न केवल जीवन प्रक्रिया बाधित होती है बल्कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक प्रगति पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पर्यावरण में अनेक प्रदूषण होते जा रहे हैं जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, नाभिकीय प्रदूषण आदि।

वायु प्रदूषण :-

वायु में होने वाले भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में अवांछनीय परिवर्तन, जिससे प्राणी जगत एवं वनस्पति जगत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, वायु प्रदूषण कहते हैं। आजकल कलकारखानों, यातायात साधनों आदि से काफी धुआँ निकलता है जिससे आक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है जिससे खून की कमी, हृदयरोग, क्षयरोग आँख, कान, गले में जलन आदि अनेक बीमारियाँ हो जाती है। औद्योगिक भट्टियों से निकलने वाली कई गैसों से कैंसर होने का खतरा बढ़ जाता है। फसलों, शाक-सब्जियों तथा फलदार वृक्षों को बहुत हानि होती है।

निराकरण के उपाय :-

भारतीय संस्कृति में पेड़ों की पूजा की जाती है जैसे पीपल, बरगद, खेजड़ा आदि की। इसी तरह हरे हरे पेड़ों को काटना हिंसा है। वनस्पति में जीव होता है। अब तो यह सभी मानते हैं। यदि हम भारतीय संस्कृति के अनुसार पेड़ों की रक्षा करें और बहुत पेड़ लगायें तो वायु प्रदूषण मिट जायेगा। जितने अधिक पेड़ होंगे उतनी वायुमण्डल में आक्सीजन की मात्रा अधिक होगी। जिससे सभी प्राणियों का स्वास्थ्य उत्तम रहेगा। पेड़ों की कटाई एवं धुएँ की अधिकता का एक मुख्य कारण जनसंख्या वृद्धि है। इसके लिये भारतीय संस्कृति के अनुसार मन पर संयम करने से जनसंख्या वृद्धि पर लगाम लगेगी। इससे मनुष्यों का स्वास्थ्य ठीक बना रहेगा। बलवृद्धि बुद्धि वृद्धि होगी। गर्भ पात आदि तरीकों से जनसंख्या पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता। गर्भपात करवाने से स्त्रियों का स्वास्थ्य खराब होगा आयु कम हो जायेगी। कल-कारखानों को चलाने हेतु सौर ऊर्जा, बायो ऊर्जा ज्वारीय ऊर्जा आदि का अधिक उपयोग करना चाहिये। इनसे धुआँ नहीं उत्पन्न होता है।

पर्यावरण में जलप्रदूषण :–

भारतीय संस्कृति के अनुसार नदियों को देवी तुल्य माना जाता है जैसे गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, कावेरी आदि लेकिन आज मानव कल कारखानों का, नगर की गन्दी नालियों का जल नदियों में मिलाते जा रहे हैं। इसी तरह कई तालाबों में भी मिलाया जा रहा है। प्रदूषित जल पीने से पेट की बीमारियाँ होती है। पीलिया जैसा भयंकर रोग प्रदूषित जल के उपयोग करने से ही होता है। फ्लोराइड मिले

जल के उपयोग से खून की कमी, दाँतों की बीमारियाँ हड्डियों का मुड़ जाना, कूबडापन आदि रोग हो जाते है। जस्ते के योगिकों से प्रदूषित होने पर जल जहरीला हो जाता है। फिनोल मिले जल के उपयोग से सिर दर्द होना, दृष्टि मन्द पड़ जाना कम सुनाई देना, बेहोशी आना आदि बीमारियाँ हो सकती है। मोती झरा, हैजा, दस्त आदि भी हो जाते हैं।

इसके निराकरण के लिये हमें नदियों को, जलाशयों को पवित्र ही बनाये रखना चाहिये। गन्दे जल को कारखानों के अवशिष्ट पदार्थों को अन्यत्र जमा करने का प्रबन्ध करना चाहिये। पेयजल को यांत्रिक विधियों से भी शुद्ध किया जाना चाहिये।

पर्यावरण में मृदा प्रदूषण :-

मृदा में उत्पन्न भौतिक, रासायनिक तथा जैविक परिवर्तनों से मृदा की गुणवत्ता व उपयोगिता में कभी आ जाने को मृदा प्रदूषण कहते हैं। कई कारणों से मिट्टी प्रदूषित हो जाती है।

रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओं के अधिक उपयोग से औद्योगिक इकाइयों के अपशिष्ट पदार्थों से, मृदा अपरदन से अधिक सिंचाई करने से मृदा प्रदूषित होती है।

मृदा प्रदूषण बढ़ने से कृषि उपजों का उत्पादन घटता है। कीटनाशक दवाओं का उपयोग सब्जियों, फसलों आदि में करने पर ये मनुष्यों को हानि पहुँचाते हैं।

मृदा, प्रदूषण दूर करने के लिये जैविक खादों का उपयोग जैसे पशुओं का गोबर, मल आदि, कीटनाशक दवाओं एवं रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कम करना चाहिये। खेतों के किनारों पर या पहाड़ी ढालों पर सघन वृक्षारोपण करना चाहिये ताकि मिट्टी कट-कट कर बहे नहीं।

ध्वनि प्रदूषण :-

आज कल कारखानों, यातायात के साधनों द्वारा ध्वनि प्रदूषण हो रहा है। मानव की श्रवणेन्द्रिया 75 डेसीबल तक का शोर आसानी से सहनकर सकती है। इससे अधिक नहीं। इससे अधिक अवाज होने पर सरदर्द, कम सुनाई देना, कार्यकुशलता में कभी होना आदि परेशानियाँ हो जाती है। उक्त स्क्तचाप, हृदय रोग, भूलने की प्रवृति, अनिद्रा रोग हो जाते हैं। स्वभाव चिड़चिड़ा तथा स्नायु विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

इसके निराकरण के लिये वाहनों पर ध्वनि अवरोधक लगाने चाहिये। पेड़ पौधे लगाना चाहिये क्योंकि ये ध्वनि का अवशोषण करते हैं।

नाभिकीय प्रदूषण (Nuclear Pollution) :-

यह सबसे अधिक खतरनाक प्रदूषण है। रेडियो धर्मी पदार्थों की क्रियाशीलता द्वारा हुए प्रदूषण को नाभिकीय प्रदूषण या रेडियो धर्मी प्रदूषण कहते है। ये परमाणु परीक्षण, परमाणु बमों के विध्वंश में उपयोग करने परमाणु संयत्रों में नाभिकीय रिसाव के कारण तथा कोबाल्ट थोरियम कार्बन आदि प्रमुख रेडियों धर्मी पदार्थो के कारण होते हैं।

इनके कारण अपार जन धन की हानि होती है। भारतीय संस्कृति के अनुसार अत्यन्त हिंसा का दोष लगता है।

इससे आनुवांशिक गुणों में परिवर्तन हो जाता है। अमेरिका द्वारा सन् 1945 में हीरो शिमा व नागासाकी में बम गिराये जाने के कारण रेडियों धर्मीता से प्रभावित व्यक्तियों के अभी भी अपंग बच्चे होते हैं। इनसे जन्म, वायु एवं वनस्पति पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

इसके निराकरण के लिये हमें भारतीय संस्कृति की पूर्ण जानकारी करनी चाहिये। हिंसा को हमारा देश कतई महत्व नहीं देता। अतः परमाणु हथियारों की होड़ से बचना चाहिये।

2– सांस्कृतिक पर्यावरण :-

यदि हम भारतीय संस्कृति को पुनः अपनायें तो सांस्कृतिक , पर्यावरण सुन्दर बन सकता है। आज पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से पारिवारिक ढाँचे ढहते जा रहे है। आज शिष्टाचार, व्यवहार, प्रेम, मानवता नष्ट होती जा रही है। टीवी में अश्लील प्रदर्शन होते हैं। सास ससुर, बेटा बेटी, बहु सब एक साथ उन अश्लील दृश्यों को देखकर खुश होते हैं। भारतीय संस्कृतिनुसार पति को परमेश्वर माना जाता है लेकिन आज टी.वी की संस्कृति के कारण पति को हलो रमेश कहकर पुकारने लगी है। पति को यार मानती है यदि वह अपने विचारों के अनुसार नहीं चले तो तलाक देने में देर नहीं करते। आज लड़कियों के पहनावे में अंग प्रदर्शन की होड़ लगी है। इसमें लड़कियों का ही दोष नहीं उन माता पिताओं का भी उतना ही दोष है। क्योंकि वे उस प्रकार के वस्त्र खरीद कर लाते है। आज अन्तर्जातिय

विवाह बढते जा रहे हैं परिणाम हमारे सामने है। घर में कलह, आत्म-हत्या तलाक जैसी स्थितियाँ बढ़ती जा रही है। कोर्ट-कचहरियाँ भरी लगती है। यदि हम प्राचीन या भारतीय संस्कृति को अपनाये तो निश्चित हमारे आचार-विचार, खान-पान रहन-सहन सुधर जायेंगे। भारतीय समाज सुदृढ़ बनेगा।

पर्यावरण वह पुण्य क्षेत्र है, अमल असीम त्याग से जिसकी दिव्य रश्मियां पाकर मानवता विकसित होती है।

3– आध्यात्मिक पर्यावरण :-

यदि व्यक्ति आध्यात्मिक वातावरण में रहे तो वह धैर्यवान, साहसी निर्भीक और शान्ति का अनुभव करता है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों का मन शान्त रहता है। मन अशान्त रहने पर अनेक बीमारियाँ हो जाती है। मन स्फूर्ति का स्त्रोत है। हमारे शरीर के समस्त रोगों का इलाज हमारे मन में है। परेशानी का इलाज खुशी है, झूठ का इलाज सच्चाई है। खुशी और सच्चाई पैसे देकर नहीं मिल सकती। मानसिक परेशानियों के इलाज के लिये डॉक्टर के पास पैसा बहाने से कोई लाभ नहीं। प्रत्येक अच्छा विचार धीरे-धीरे मस्तिष्क को दृढ़तर बनाता चला जाता है। मानसिक नियन्त्रण के माध्यम से सफल व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सभी प्रकार के विचारों से शरीर के सारे अंगों में कोई न कोई विशिष्ट प्रतिक्रिया होती है। बुरी आदतों का सीधा प्रभाव हमारे हृदय और आमाशय पर पड़ता है। लोग भय से सफेद पड़ जाते है प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि अनियमित तौर पर सोचते रहने से इन स्नायु तन्तुओं को बहुत नुकसान पहुँचता है, जब कि उत्साहवर्धक प्रेरणादायक, प्रगतिशील विचार इन स्नायु तन्तुओं को जीवन शक्तियों से भर देते हैं। आदतों का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है।

असंयमी, आलसी, प्रमादी व्यक्ति, रोगी होते है। मनुष्य सर्व श्रेष्ठ प्राणी है। बुद्धि से विचार कर, धर्म-अधर्म का विचार करके, कार्य करने की क्षमता, मानव ही रखता है। अपने हित-अहित की बात का जितना मानव विचार कर सकता है उतना अन्य प्राणी नहीं कर सकता। मानव विचार शक्ति का भण्डार है तो भी अज्ञान से अल्पज्ञता से युक्त है। हमारे पूर्वाचार्यानुसार राग द्वेष से मानव अनेक क्लेशों का संग्रह करता है। अविद्या के कारण ही मानव भोगों को भोगता है, शुभ-अशुभ कर्म करता है। गौतम गणधर ने कहा है कि इन्द्रियों के संस्कार से विकृत हो जाने से मानव अविद्या में फंस जाता है।

भारतीय संस्कृति में मांसाहार वर्जित किया गया है। मांसाहार से हिंसा पाप तो होता ही है बल्कि शरीर भी रोगी बन जाता है। मन में विकार बने रहते हैं। शाकाहार में सभी विटामिन भरपूर विद्यमान है। इस प्रकार हमें स्वस्थ रहने के लिये तथा स्वस्थ चिन्तन-मनन, उत्तम आचरण के लिये शाकाहार ही ग्रहण करना चाहिये ताकि शरीर निरोगी रहे।

हमें आध्यात्मिक पर्यावरण ठीक से बनाये रखने के लिये आत्मविश्वास को जगाना होगा। आत्म विश्वास चिन्ता का नाश करता है। हमें कुछ सूझता नहीं, इसलिये हम भयभीत रहते हैं, किन्तु आत्म विश्वास हमारा मार्ग दर्शन करता है। आध्यात्मिक शक्ति एक ऐसी शक्ति होती है जो विपत्ति में भी मनुष्य को हंसमुख रखती है। विपति को हंसते हंसते सहन कर लेता है।

हमारी भारतीय संस्कृति या जैन संस्कृति कहती है मनुष्य पाँच पापों के कारण, मोह के कारण संसार में दुःखी होता है। पाँच पाप है हिंसा, झूठ,चोरी, कुशील और अति परिग्रह।

हिंसा- आज संसार में हिंसा तांडव नृत्य कर रही है देश में हजारों बूचड़खाने असंख्य पशुओं का वध कर रहे है। आतंकवादी अकारण लोगों को मार रहे है। जैन धर्म में तो यहाँ तक कहा है कि किसी प्राणी के मन को ठेस पहुँचाना भी हिंसा है। यदि व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति, करे तो हिंसा से बच सकता है। अत्यधिक हिंसा के कारण ही भूकम्प, तूफान आदि आते है।

झूठ– आज मनुष्य हर बात में झूठ का सहारा लेता है। झूठ पकड़ में आने पर दुखी होता है।

मनुष्य को सत्य वचन ही बोलने चाहिये। कहा है -

हित मित प्रिय वचः जीव हित साधकम्।
स सत्यं आगम वचः स्याद्वाद सहितम्।।

सत्य की परिभाषा करते हुए कहा है जो वचन हितकर है, सीमित है, प्रियकर है, जीव के लिये हितकारी हैं, आगम अनुकूल है और स्याद्वाद् सहित है वे ही वचन सत्य है। यदि व्यक्ति क्रोध की भाषा नहीं बोलता हो घर में, समाज में देश में झगड़े न हों।

झूठी गवाही देना, कोर्ट में अन्याय पक्ष का साथ देना, जाल साजी के वचन कहना, सब असत्य है। असत्य से इहभव और पर भव दोनों बिगड़ते हैं।

चोरी–अन्याय, अत्याचार, चोरी से धन प्राप्त करने वालों के धन नहीं टिकता

अन्याय उपार्जित धन दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्रेत्य, एकादश वर्षे सभूलं च विनश्यति।।

अन्याय से उपार्जित धन 10 वर्ष तक रहता है। 11वें वर्ष में मूल सहित नष्ट हो जाता है।

चोर कभी चैन की नींद नहीं सो सकता। अतः उसका जीवन दुखी रहता है।

कुशील– काम चेतना प्राणी मात्र में एक दुर्दमनीय विकार भाव है। काम प्रवृत्ति से आत्मा की ऊर्जा क्षीण हो जाती है। ऊर्जा क्षीण होने से मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जिससे मनुष्य में उत्साह धैर्य, ज्ञान-विज्ञान, विवेक-संयम आदि नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि के समान है।

अधिक परिग्रह- आवश्यकता से अधिक परिग्रह रखने पर मनुष्य बहुत दुखी हो जाता है। उन्हें सुरक्षित रखने सार सम्भाल करने में लगा रहता है। जिससे वह अनेक पापों का संचय करता है।

आध्यात्मिक पर्यावरण बनाये रखने के लिये इन पांचों पापों से बचना चाहिये। सप्त व्यसन भी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक हैं। हिंसा से बचने के लिये रात्रि भोजन त्याग भी आवश्यक है।

भारतीय संस्कृति एवं पर्यावरण संरक्षण

– नवलकिशोर चोरसिया

संस्कृति एवं पर्यावरण :-

किसी भी देश की परम्पराएं एवं जीवन शैली वहां की संस्कृति को परिलक्षित करती है, जबकि वहां का प्राकृतिक परिवेश वहां के पर्यावरण का निर्धारण करता है। भारतीय संस्कृति दुनियां की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। इसका मुख्य कारण यही है कि यहां की सामाजिक परम्पराएं एवं जीवनशैली प्रकृति के साथ तालमेल बैठाते हुए जीने की रही है। दुनियां का प्राकृतिक इतिहास एवं वैज्ञानिक विश्लेषण बताता है कि पृथ्वी पर जीवन का उदय जल और थल दोनों में सर्वप्रथम स्थावर पेड़– पौधों के रूप में प्रारम्भ हुआ। इसके बाद जलचर, नभचर एवं थलचर उत्पन्न हुए। इन सबका आधार किसी न किसी रूप में यही पेड़–पौधे हैं। इन जैव-विविधताओं में सबसे उत्कृष्ट परिणिति मनुष्य जीवन माना गया है। सबका सह-अस्तित्व बन रहे यही पर्यावरण संरक्षण है।

''जैन मत'' एवं ''पतञ्जलि योग'' सूत्रों में पर्यावरण संरक्षणः-

भारतीय मनीषियों, ऋषि-महर्षियों ने जब बहुत कम आबादी रही होगी, तभी जंगलों में रहते हुए सत्य, अहिंसा, का 'कवच' पहनकर हिंसक, अहिंसक सभी जानवरों के बीच पेड़-पौधों के संरक्षण में रहकर भारतीय संस्कृति का प्रादुर्भाव किया। ''अस्तेय'' एवं ''अपरिग्रह'' का पाठ पढ़ाया। प्रकृति से जितना लेना उतना यज्ञ रूप में वापस देना सिखाया। प्रकृति से क्या; किसी से भी किसी भी रूप में जितना आवश्यक हो उतना ही लेना (आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना) यही ''अस्तेय'' है और किसी न किसी रूप में उसे (जो उसका अधिकारी है) वापस करना, यही ''अपरिग्रह'' (उसे ग्रहण न करना जिस पर अन्य किसी का अधिकार बनता हो) है। ''जैन मत'' के ये दो सिद्धान्त तथा ''पतञ्जलि योग सूत्र'' में प्रथम सूत्र ''यम'' के यही दो सिद्धान्त भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण के पर्याय हैं। हमें निरूपण करना है कि भारतीय संस्कृतिक परम्पराएं किस प्रकार इनका निर्वाह करना सिखाती है।

पर्यावरण संरक्षण यथा वनस्पति सरंक्षणः-

उपरोक्त भूमिका से यह तो सुनिश्चित हो चुका है जैसी कि सामान्यतया

मान्यताएं भी है कि पर्यावरण संरक्षण सर्वप्रथम सीधा-सीधा वनों एवं पेड़-पौधों के संरक्षण से जुड़ा है। भारतीय संस्कृति की विभिन्न परम्पराएं सीधे-सीधे पेड़ के संरक्षण से जुड़ी है।

(अ) पेड़ों की पूजा :-

भारत में सर्वत्र ही कई विशेष पेड़ों की पूजा की जाती है जिनमें निम्न विशेष उल्लेखनीय है:

1. पीपल:- भारतीय दर्शन के अनुसार सृष्टि के कल्प के अन्त में प्रलय के समय भगवान विष्णु का वास (ईश-प्रकाश) पीपल के पत्ते में रहता है। जो पुन: अगले ''कल्प'' की सृष्टि के लिए बीज बनता है।

वैज्ञानिक पक्ष के अनुसार अन्य सभी वृक्ष जीवोपयोगी ऑक्सीजन सूर्य के प्रकाश से केवल दिन में ही छोड़ते हैं। रात्रि को नाइट्रोजन एवं अन्य गैसें छोड़ते हैं, जबकि 'पीपल' का वृक्ष दिन एवं रात्रि में सदैव ही ऑक्सीजन छोड़ता है अर्थात् प्रलय के अन्धकार में भी जीवनी शक्ति प्रदान करता है।

2. तुलसी :- घर में तुलसी का पौधा भारतीयता की पहिचान है। तुलसी महौषधि मानी गई है।

तुलसी का पौधा घर के द्वार पर या आंगन में होने पर मकान के वास्तु दोषों का निवारण हो जाता है।

वैज्ञानिक पक्ष के अनुसार तुलसी में सुपाच्य मात्रा में सर्वोपरि विष ''पारा'' होता है जो अन्य किसी माध्यम से शरीर में नहीं पहुंचाया जा सकता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए (माइक्रो–एलीमेन्ट के रूप में) हर धातु की आवश्यकता होती है। आयुर्वेदिक दवाइयों में परिष्कृत कर प्राकृतिक विषों का उपयोग किया जाता था जो दूरगामी प्रभाव रखते थे, जबकि एलोपेथी में क्षणिक प्रभावी अप्राकृतिक एन्टीबायोटिक दवाओं का उपयोग उसी प्रयोजन के लिए किया जाता है जो असह्य खर्चीली एवं हानिकारक है।

3. आँवला :- भोजन के छ: रसों में एक कसैला है (तोरा), जो भोजन पाचन क्रिया (शक्कर नहीं बढ़ने देने) के लिए अनिवार्य है। आंवला कसैला फल होने के साथ-साथ विटामिन 'सी' से भरपूर है जो चर्मरोगों के लिए रामबाण है। अन्य फल सब्जियों में उबालने या सुखाने पर उनके विटामिन नष्ट हो जाते हैं,

जबकि आंवले का विटामिन 'सी' उबालने या सुखाने पर भी नष्ट नहीं होता।

4. खेजड़ी :- रेगिस्तान में जहां खेजड़ी का वृक्ष होता है वहां उसकी पूजा की जाती है। काटने नहीं दिया जाता था। मारवाड़ में खेजड़ी के पेड़ों को बचाने के लिए सैंकड़ों स्थानीय लोगों द्वारा चिपक कर कट-कट कर बलिदान हो जाने का इतिहास साक्षी है।

वैज्ञानिक पक्ष के अनुसार खेजड़ी की फली (सांगरी) मिनरल्स से भरपूर सब्जी है। इसकी जड़ों में ऐसे 'माइकोराइजा' पाये जाते हैं जो हवा से सीधे 'नाइट्रोजन' (उर्वरक गैस) खींच कर मिट्टी में मिलाते रहते हैं जो कृषि उपज की बढ़ोतरी करता है। यद्यपि पूजने वालों एवं बचाने वालों को यह तथ्य मालूम न रहा हो, किन्तु सांस्कृतिक परम्पराओं से स्वयं सिद्ध है।

इसी प्रकार अन्यान्य कई वृक्ष जातियों की पूजा की प्रथा भारत के विभिन्न प्रदेशों में पाई जाती है जो भारतीय संस्कृति का अंग है।

(ब) वंश वृक्ष :-

भारतीय संस्कृति का मूल आधार परिवार है। ज्यों-ज्यों पारिवारिक आधार का विस्तार हुआ, वंश प्रजातियां अस्तित्व में आई। कभी एक पूर्वज से निकले परिजनों की एक वंश प्रजाति बनी। अपने वंश की विशेषताओं को पीढ़ी–दर–पीढ़ी बनाये रखने के लिए प्रत्येक वंश प्रजाति अपनी-अपनी परम्पराओं का निर्वाह यथासम्भव आज तक भी करती है। ऐसी ही एक परम्परा ''वंश वृक्ष'' संरक्षण एवं पूजन की है। क्षत्रीय कुल जिस पर समाज रक्षा का दायित्व रहा है वे पर्यावरण की रक्षा भी अपने-अपने 'वंश वृक्षों' को रोपण, पालन, रक्षण एवं पूजन कर किया करते थे। इन्हें वे कभी नहीं काटते थे न किसी को काटने देते थे। इनमें से कुछ विशेष निम्न हैं :-

वंश	प्रजाति		वंश वृक्ष	वंश	प्रजाति		वंश वृक्ष
1.	शिशोदिया	:	बिल्व	2.	कछवाहा	:	बरगद
3.	चौहान	:	पीपल	4.	राठौड़	:	नीम
5.	तोमर	:	खेजड़ी	6.	हाड़ा	:	आशापाला
7.	यदुवंशी	:	कदम्ब	8.	जोहिये	:	फराश

इसका वैज्ञानिक पक्ष यह है कि ये सभी वृक्ष प्रजातियां वायुमण्डल से प्रदूषण

फैलाने वाली गैसों यथा– कार्बनडाइ ऑक्साइड्स, सल्फरडाइ ऑक्साइड्स, नाइट्रोजन आदि को सोंख कर जीवनप्रदायी ''ऑक्सीजन'' वापस वायुमण्डल में फैंकने वाली प्रजातियां है। इन सभी वृक्षों के सभी अंग, पत्ते, फूल, फल, छाल आदि विभिन्न रोगों के लिए पारम्परिक देशी उपचार में काम में लिये जाते हैं। इनकी लकड़ी का फर्नीचर भी अच्छा नहीं बनता न ही अच्छी जलाऊ लकड़ी होती है। इसलिए हम देखते हैं कि सारे जंगल साफ हो जाने के बाद भी ये वृक्ष बचे रहते हैं।

ये परम्पराएं कैसे और कब चलीं पता नहीं, किन्तु कितनी वैज्ञानिक एवं सोची-समझी है, यह अकाट्य रूप से सिद्ध है।

(स) नक्षत्र वृक्षः

मनुष्य का जन्म जिस नक्षत्र में होता है उसका प्रभाव उसके स्वभाव एवं वृत्ति पर सदैव जीवन पर्यन्त रहता है। यह सर्वमान्य तथ्य है। हमारे ज्योतिष विज्ञान एवं सांस्कृतिक परम्पराओं में प्रत्येक नक्षत्र की एक वृक्ष प्रजाति निर्धारित है। नक्षत्र वृक्ष को घर में लगाना, पूजा-अर्चना करने, रक्षण-संरक्षण देने से जातक के निवास के वास्तु दोष निवारण तथा मानसिक शारीरिक सुखों की प्राप्ति होती है। काटना दुःखप्रदायी होता है। ऐसी मान्यताएं हैं। ये नक्षत्र वृक्ष निम्नानुसार है:

क्र.सं.	नक्षत्र	नक्षत्र वृक्ष	क्र.सं.	नक्षत्र	नक्षत्र वृक्ष
1.	अश्विनी	कुचला	2.	भरणी	आंवला
3.	कृतिका	गूलर	4.	रोहिणी	जामुन
5.	मृगशिरा	खैर	6.	आर्द्रा	अगर
7.	पुनर्वसु	बांस	8.	पुष्य	पीपल
9.	अश्लेषा	चमेली	10.	मघा	बड़
11.	पूर्वाफाल्गुनी	ढाक	12.	उत्तराफाल्गुनी	पिलखेन
13.	हस्त	जाई	14.	चित्रा	बेलपत्र
15.	स्वाति	अर्जुन	16.	विशाखा	बंबूल
17.	अनुराधा	नागकेसर	18.	ज्येष्ठा	सम्बल
19.	मूल	राल	20.	पूर्वाषाढ़ा	बेंत
21.	उत्तराषाढ़ा	पनश	22.	श्रवण	आक
23.	धनिष्ठा	जांटी	24.	शतभिषा	कदम्ब
25.	पूर्वाभाद्रपद	आम	26.	उत्तराभाद्रपद	नींबू
27.	रेवती	महुआ			

ये वृक्ष जहां सभी औषधीय पौधे हैं वहीं नक्षत्र विशेष के प्रभाव का शमन करने वाले है। उदाहरणार्थ ''रोहिणी'' का प्रभाव गर्म होता है जो तपने पर समुद्र का पानी भाप बनकर बरसात का आगमन होता है। रोहिणी की तपन के आधार पर ही वर्षा का पूर्वानुमान लगाया जाता है। जामुन का प्रभाव ठण्डा और मौसम के बदलाव से होने वाली पेट की गड़बड़ दूर करता है। शोध से सभी में इसी प्रकार शमनकारी प्रभाव सामने आयेंगे।

(द) अन्य परम्पराएंः-

भारतीय संस्कृति ने जहां औषधीय एवं वायु शुद्ध करने वाले पौधे के संरक्षण की व्यवस्था के लिए विभिन्न परम्पराओं का उद्भव भी किया है वहीं पेड़–पौधों एवं प्रकृति के सन्तुलित दोहन की व्यवस्था भी की है। पेड़-पौधों में जीवन मानकर अनावश्यक काटना पाप मानते हैं, रात्रि को पत्ते, फूल, फल तोड़ना निषेध है। औषध लेने से पहले दीप जलाकर प्रार्थना की जाती है। हम वृक्षों को काटे बिना अपना काम साधते रहे हैं। हमारी संस्कृति में सामुहिक भोजन में पत्तल-दोने में, ठेलों पर चाट-पकोड़े खाने के लिए मात्र पत्तों का उपयोग किया जाता है। पेड़ को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया जाता, वहीं प्लेटें धोकर काम में लेने से होने वाले रोगों से बचाव भी होता है।

संस्कृति एवं वन्य जीव संरक्षणः-

वनों के साथ वन्य जीवों का संरक्षण भी पर्यावरण संरक्षण के अन्तर्गत आता है। हमारी संस्कृति में वन्य जीवों के संरक्षण सम्बन्धी भी अनेक परम्पराएं प्रचलित है जिनमें कतिपय अग्रलिखित प्रकार से है:

(1) **हिरण पूजक जातिः** जैसलमेर जिले में जाति विशेष के लोग हिरणों की पूजा करते हैं। उनका संरक्षण करते हैं। हाल ही में फिल्म एक्टर सलमान खान द्वारा किये गये हिरण के शिकार का पर्दाफाश इन्हीं लोगों ने किया था।

(2) **नाग पूजाः** सर्वविदित है कि भारत में सबसे विषधर नाग को देवता मानकर नाग पंचमी को उसकी पूजा करते हैं और दूध पिलाते हैं।

(3) **चींटी चुग्गाः** हमारी परम्पराओं में चींटीयों तक को आटा-शक्कर मिलाकर चुग्गा डालने की परम्परा रही है।

(4) **श्राद्ध पक्ष में** पशु-पक्षी का आह्वान कर कौओं, कुत्तों को भी आहार

खिलाया जाता है।

(5) **चिड़ियों के** लिए भी हमारे घर-घर में पानी भरकर सकोरे आदि रखे जाते हैं।

(6) **कबूतरों** को भी मक्की दाना डालने की प्रथा सदियों से हर मन्दिर प्रांगण में चली आ रही है।

(7) **गौ–वत्स** पूजन वच्छबारस को करने की प्रथा भी प्रचलित है।

(8) **गौपास्टमी** एवं दीपावली के दूसरे दिन यानि खेंखरा के दिन विशेषकर बैलों की पूजा की जाती है।

(9) **मौर** को मारना भी जघन्य अपराध माना जाता है।

हमारी संस्कृति में पशु-पक्षी संरक्षण की ऐसी ही कई प्रकार की परम्पराएं सदियों से प्रचलित है।

संस्कृति एवं जल संरक्षणः-

प्राकृतिक जल संसाधन, नदियां, कुंए–बावड़ियां, तालाब आदि का संरक्षण, संश्लेषण भी पर्यावरण संरक्षण से जुडा है। हमारे यहां पानी की सीमित मात्रा को सदैव से कम से कम खर्च करने की परम्पराएं रही है।

जलस्रोतों की महत्ताः-

भारतीय संस्कृति नदियों को अपनी माता मानती है। हम प्रवाहित जल को शुद्ध मानकर उसकी पूजा करते रहे हैं। हरिद्वार, बनारस, मथुरा, गंगासागर में दीप-दान संध्या आरती आदि अब भी दर्शनीय है।

जलस्रोतों की शुद्धताः-

हमारे यहां ब्रिटिश शासनकाल से पहले प्रदूषित जल का उत्पादन ही नहीं होता था। पानी बहाने वाले शौचालय होते ही नहीं थे। लोग शौच खुले में लौटा लेकर जाकर करते थे। जिसके तत्व पानी में प्रवाहित होने के बजाय धूप एवं हवा द्वारा प्रकृति के पंचतत्वों में विलीन हो जाते थे। जल स्रोत गन्दे होते ही नहीं थे।

जलाशयों की शुद्धताः-

कुएँ–बावड़ी आदि में भीतर उतर कर नहाने का प्रावधान ही नहीं था। बाहर, रंहट, चरस, बाल्टी आदि से पानी खींचकर नहाते थे। बावड़ियों का पानी अन्तः

स्रोतों से बहता था, जो कोई, मछलियों एवं कछुओं द्वारा शुद्ध होता रहता था।

जलशोधक तत्व :-

तालाबों में मछलियां, सिंघाड़े, काई, कमल आदि पानी को शुद्ध रखते थे। न मछलियों के ठेके होते थे न खाई जाती थी। यदि खाते थे तो बगुले या मगरमच्छ आदि।

इस भारतीय जीवन पद्धति से तो जल प्रदूषित होने का प्रश्न ही नही था। वर्तमान में त्वरित औद्योगिक विकास एवं शहरी जीवन पद्धति ही जहां तहां पानी के प्रदूषण के लिए उत्तरदायी है। हमें अपने सम्यक् विकास की ओर वापस मुड़ना होगा और दुनियां को भी मोड़ना होगा।

उपसंहार :-

भारतीय संस्कृति वृक्षों, वनस्पतियों एवं जैविक विविधताओं के बीच तालमेल बनाते हुए, प्राचीनकाल से ही बहुत चिन्तन-मनन, अनुभव के आधार पर समय के साथ परिवर्तनशील संस्कृति है। हमारी परम्पराओं की यह वैज्ञानिक पृष्ठभूमि हमारी संस्कृति के मूल पारिवारिक आधार से विकसित हुई है हमारी वंश–जाति प्रथा हमारी सामाजिक अनुशासनात्मक व्यवस्था है जो हमारे मानसिक एवं भौतिक दोनों तरह के प्रदूषण रोकने में सक्षम है। जो समाज सुधारकों द्वारा लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं मिट रही है। ये समय अनुसार अपनी परम्पराओं एवं प्रथाओं में परिवर्तन करते हुए जीवित हैं। दुनियां में यही एक प्राचीनतम ऐसी संस्कृति है जो प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षण के साथ अपनी मंथर गति से विकसित एवं परिवर्तित होती रही है।

जहां तक जल प्रदूषण का प्रश्न है इसके लिए त्वरित औद्योगिक विकास एवं शहरी जीवन पद्धति ही उत्तरदायी है। हमें चाहिये कि चिन्तन कर अपने संस्कृति की विशेषताओं का वैज्ञानिक आधार हमारे नौ–निहालों को एवं दुनियां को समझाएं। तभी एक होती हुई दुनियां के चिन्तनशील लोग हमारे साथ जुड़कर हमारी संस्कृति को वैश्विक संस्कृति बनाने का हमारा सपना साकार हो पायेगा।

जैन–धर्म की पर्यावरणीय चिंताएं

– डॉ. (कर्नल) दलपतिसिंह बया 'श्रेयस'

पर्यावरणीय विपत्ति :–

मानव के लोभ, उसके कारण होने वाले प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन तथा प्रदूषणकारी अपशिष्टों के असावधानीपूर्वक भूतल पर या जलसंसाधनों में प्रवाहित करने या वायुमंडल में छोड़े जाने के कारण हमारे अतिसंवेदनशील पर्यावरणतंत्र पर अत्यंत हानिकर दुष्प्रभाव पड़ा है। इसके कारण होने वाले पारिस्थितिकीय असंतुलन के कारण वर्तमान भौगोलिक पर्यावरण में न केवल मनुष्यों अपितु सभी प्रकार के छोटे-बड़े प्राणियों के लिये जीवन दूभर हो गया है।

जैन-धर्म की पर्यावरणीय चिंताएं :–

'परोस्परोपग्रहो जीवनाम्' का जैन आदर्श-वाक्य (motto) जैन-धर्म की पर्यावरणीय चिंता को व्यक्त करता है। इस आदर्श-वाक्य का अर्थ है कि सभी प्रकार के जीव, चाहे वे विकास के क्रम में कितने ही नीचे या कितने ही ऊँचे क्यों न हों, परस्पर उपकार करते हैं तथा परस्पर उपकृत होते हैं। अर्थात् वे अपवे जीवनयापन के लिये एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं, यहाँ तक कि कोई भी जीव या जीवराशि बिना दूसरो के उपकार या सहारे के जीवित ही नहीं रह सकते हैं। इसका सीधा-सीधा अर्थ है कि सभी प्राणियों को जीवित रहने के लिये अन्य प्राणियों के साथ एक प्रकार का संतुलन बनाए रखकर उनके साथ सहअस्तित्व बनाए रखना चाहिये। इस विचार को जैन-धर्म के सर्वोच्च अहिंसा-सिद्धान्त से बल मिलता है जिसके अनुसार प्रत्येक प्राणी को षड्जीव-निकायों के अन्य प्राणियों को प्रति किसी भी प्रकार से हताहत करने से विरत होना चाहिये। यहाँ तक कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्थावर ऐकेन्द्रिय निगोद-वनस्पतिकायिक, पृथ्वीकायिकादि जीवों से लगाकर विकास के सर्वोच्च शिखर पर आसीन संज्ञी-पंचेन्द्रिय जीवों तक के सभी जीवों के प्रति सम्मान व बराबरी का व्यवहार करना चाहिये क्योंकि वे सब उसके जीवित रहने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

पर्यावरणीय विकृति के कारण :–

पर्यावरणीय विकृति तथा पारिस्थितिकीय असंतुलन के कारणों की तलाश में हमें कहीं दूर नहीं जाना होगा, वे सब हमारे आस-पास ही विद्यमान रहते हैं यहां तक कि उनमें से कइयों के लिये तो हम स्वयं ही उत्तरदायी भी होते हैं। उन्हें हम निम्न वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं:–

- प्राकृतिक संसाधनों का अनियोजित व अंधाधुंध दोहन,
- मानव जाति द्वारा अतिभोग तथा अपव्ययी उपभोग,
- पारिस्थितिकी–तंत्र से संतुलनकारी तत्त्वों को हटा दिया जाना, तथा
- घरों तथा उद्योगों द्वारा अतिसंवेदनशील पारिस्थितिकी-तंत्र में प्रदूषणकारी अपशिष्टों को प्रवाहित किया जाना।

पर्यावरणीय समस्या का जैन– समाधान :-

अपने अहिंसा व जीवों के परस्पर उपकार (निर्भरता) के सिद्धान्त तथा तदनुसार पारिस्थितिकी-तंत्र के विभिन्न अवयवों के बीच सामंजस्य के निरूपण के चलते तो जैन जीवन-पद्धत्ति इन सब कारणों का निरोध करती है तथा दूसरे वह बाधित पारिस्थितिकीय संतुलन को पुनर्स्थापित करने में सहायक भी होती है। भगवान महावीर ने अपने उपदेशों में षड्जीव–निकायों के जीवों के मध्य पारस्परिक समन्वय पर अत्यंत बल दिया तथा कहा, ''एक निष्ठावान अनुयायी को छः प्रकार के जीवों की समान रूप से चिंता करनी चाहिये तथा ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये जिससे वे किसी प्रकार से हताहत हों''।

जैन जीवन-पद्धत्ति तथा पारिस्थितिकीय संतुलन :–

जैन-धर्म इस शाश्वत समस्या के समाधान के लिये धरती के प्राणियों में विकास के सर्वोच्च शिखर पर आसीन मनुष्य को उत्तरदायी बनाता है। इसी कारण जैन जीवन-पद्धत्ति, चाहे वह सर्वविरत अणगार श्रमणों की हो अथवा देश-विरत गृहस्थ श्रावकों की, का विकास उनके विकासक्रम से निरपेक्ष सभी जीवों के प्रति अहिंसा

के सार्वभौम सिद्धान्त को केन्द्र में रखकर किया गया है। जैन जीवन-पद्धत्ति में पूर्ण रूप से विकसित मनुष्य से लगाकर विकासक्रम में उसके नीचे के प्राणियों– पशु, पक्षी, मत्स्य, कीट-पतंगे, तथा पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक व वनस्पतिकायिक स्थावर-त्रस एकेन्द्रिय सूक्ष्मजीवों तक के प्रति पूर्ण अहिंसा व दयालुता का भाव निहित है जिसके कारण वह पारिस्थितिकीय संतुलन को बिगाड़ने के सभी कारणों का प्रतिकार करके उसे स्थापित करने तथा बढ़ाने में सहायक होती है। जैन-धर्म के मनीषियों तथा प्रवर्तकों ने यह महसूस किया कि पारिस्थितिकी–तंत्र के अन्य प्राणी भी हमारा बहुत उपकार करते हैं अतः उन्होंने अपने अनुयाइयों के लिये उन जीवों को समाहित करने वाले उन पारस्परिक जीवनरक्षक तंत्रों को नष्ट करने का निषेध किया जो इस प्रकार के पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाए रखते हैं।

जैन-धर्म इस समस्या का निराकरण आध्यात्मिक व व्यवहारिक दो स्तरों पर करता है। आध्यात्मिक स्तर पर वह यह मानता है कि षड्जीवनिकायों के जीवों की रक्षा करना तथा ऐसी जीवनशैली को अपनाना जिसमें प्रकृति के साथ कम से कम छेड़छाड़ हो, पाप-निवारक व पूर्वबद्धकर्मक्षयकारक होने से आत्मशोधक तथा आध्यात्मिक रूप से उत्थानकारक है। व्यवहारिक (चारित्रिक) स्तर पर जैन श्रमणों तथा श्रावकों के आचार के नियम इस प्रकार के हैं कि वे उन्हें पारिस्थितिकी-तंत्र (प्रकृति) में किसी प्रकार की विकृति पैदा करने से रोकती है।

जैन-व्रतों से पर्यावरण-संरक्षण :-

जहां तक जैन श्रमण-श्रमणियों की आचार-प्रणाली का प्रश्न है, उनके पूर्ण अहिंसा, पूर्णसत्याचरण, पूर्णअचौर्य, पूर्णब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह के महाव्रत इतने कठोर हैं कि उनकी जीवन-प्रणाली का पारिस्थितिकीय संतुलन के साथ कभी कोई विरोध हो ही नहीं सकता है।

---

1 दशवैकालिक, 4.29।

अहिंसा के दृष्टिकोण से वे किसी भी प्राणी को न तो मारते हैं न सताते हैं, वे वनस्पति पर नहीं चलते हैं, उसे नहीं कुचलते हैं, फूल और पत्ते नहीं तोड़ते हैं, पेड़ नहीं काटते हैं, किसी भी सचित वस्तु का उपयोग नहीं करते हैं तथा इस प्रकार किसी भी प्राणी को हताहत नहीं करते हैं। उनके लिये प्रकृति में किसी भी वस्तु को प्रदूषित करना, छेड़ना, नष्ट करना, नुकसान पहुंचाना आदि उनमें निहित जीवों के प्रति हिंसा है अतः त्याज्य हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर वे जयणापूर्वक (ध्यानपूर्वक, सावधानी से) चलते हैं, जयणापूर्वक उठते हैं, जयणापूर्वक बैठते हैं, जयणापूर्वक सोते हैं, जयणापूर्वक खाते हैं तथा जयणापूर्वक बोलते हैं ताकि उनकी इन क्रियाओं के द्वारा किसी भी प्राणी को नुकसान न पहुंचे। उनके पूर्ण अहिंसा के पालन से यह सुनिश्चित होता है कि उनके द्वारा न केवल प्राकृतिक संतुलन न बिगड़े अपितु उसकी सुरक्षा व संरक्षा को बढ़ावा मिले। वे अपने पवित्र धर्म-शास्त्रों के इस कथन का अक्षरशः पालन करते हैं कि सभी जीवों में आत्मा समान है तथा निगोद-वनस्पतिकाय जैसे छोटे से छोटे जीव को हताहत करना भी उतना ही पापक है जितना कि किसी मनुष्य को हताहत करने में होता है। यहाँ तक कि जैन श्रमण-श्रमणियाँ कच्ची वनस्पतियों का सेवन भी नहीं करते हैं, सचित्त जल का उपयोग नहीं करते हैं, गीले स्थानों व पानी से भरे गड्ढों पर नहीं चलते हैं, स्नान नहीं करते हैं तथा सामान्यतया, जब तक पार जाने के लिये कोई अन्य मार्ग न हो तब तक, नदी-नालों को पार नहीं करते हैं। उनके सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह व्रत भी पर्यावरण-सुरक्षा में बहुत बड़ी भूमिका निबाहते हैं क्योंकि उनके पालन से वे सभी प्रकार के प्रलोभनों से दूर रहते हैं तथा पूर्ण अहिंसा के पालन के द्वारा पारिस्थिकीय संतुलन को बनाने तथा बनाए रखने में सहायक होते हैं। अन्य बड़े प्रदूषणों की तो बात ही क्या, वे वायुमंडलीय प्रदूषण के प्रति भी इतने सजग होते हैं कि कुछ जैन-संप्रदायों के श्रमण-श्रमणियाँ अपने मुँह पर सदैव एक वस्त्र-पट्टिका (मुखवस्त्रिका) बाँधे रहते हैं।

जैन अयाजक वर्ग (गृहस्थ उपासक) भी इन व्रतों का पालन करते हैं किंतु आजीविकोपार्जन तथा गृहस्थ-धर्म के निर्वहनार्थ वे उनका पालन उतनी उठोरता से नहीं कर पाते हैं। उनके स्थूल हिंसा विरति, स्थूल असत्याचरण विरति, स्थूल अदत्तादान विरति, लिंगानुशासन व स्वदारासंतोष और परिग्रह-परिमाण तथा

अतिभोगोपभोग विरति के अणुव्रतों के पालन से उनकी जीवनशैली भी ऐसी ही बन जाती है कि उसका पर्यावरण पर विशेष प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। इसके अतिरिक्त कि कई जैन उपासक-उपासिकाएँ भी साधक-साधिकाओं के लिये विहित अनेक नियमों का कड़ाई से पालन करते हैं, वे कुछ ऐसी आजीविकाओं तथा उद्योगों से भी परहेज करते हैं जिनमें सूक्ष्म या स्थूल जीवों की अधिक हिंसा होने की संभावना रहती है। वे वन-कर्म, भट्टी-कर्म, खनि-कर्म, ताल-शोषण, कत्लखानों, मांस-मदिरा आदि के उद्योग व व्यवसाय नहीं करते हैं। वे ऐसे उद्योग -धंधे भी नहीं लगाते हैं जिनसे पर्यावरण में भूमि, जल या वायु के लिये हानिकारक प्रदूषक अपशिष्टों का विसर्जन होता है। वे शिकार आदि हिंसक गतिविधियों में सम्मिलित नहीं होते हैं तथा शिकारी जानवर या गुंडे पालने जैसे अपकृत्य भी नहीं करते हैं। सामान्यतया वे जंतुनाशकों का प्रयोग नहीं करते हैं तथा ऐसे सभी कृत्यों से विरत रहते हैं जिनमें प्रकृति व पारिस्थितिकी के अवयवी जीव-जंतुओं का सामूहिक संहार होने की संभावना हो। वे इन्हें महारंभ की संज्ञा से सूचित करते हैं तथा इनमें प्रवृत्त होने को निंदनीय मानते हैं। कुछ उपासक तो देनंदिन प्रयोग में आने वाले जल की मात्रा तथा वनस्पतियों का भी सीमन कर लेते हैं।

शाकाहार पर्यावरण-रक्षण का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक :-

शाकाहार सभी जैन साधकों व उपासकों के लिये एक अलंघ्य निषेधादेश है। इसमें कोई दो राय नहीं कि यह सबसे महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय संतुलनकारक भी है। मांसाहार कितना खाद्य-संसाधन अपव्ययी है यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि एक मांसाहारी व्यक्ति जितने पशु-पक्षियों का भक्षण एक माह में कर लेता है वे इतना शाकाहारी भोजन खा जाते हैं जिससे सैंकड़ों शाकाहारी व्यक्ति पूरे वर्षपर्यंत पर्याप्त भोजन प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त मांसाहारी व्यक्ति प्राकृतिक भोज्य-श्रृंखला (food-chain) को ही बाधित कर देता है। इस प्रकार मानव द्वारा मांसाहार कई मायनों में पर्यावरण-क्षतिकारक है। इसे हम निम्न बिंदुओं के द्वारा अधिक स्पष्टता से देख सकते हैं:-

मांसाहार पारिस्थिकी-तंत्र से उन प्राणियों को विलुप्त कर देता है जो शिकारी जानवरों का प्राकृतिक भोजन है।

वह कई उन वनस्पतियों का नाश कर देता है जो मांसाहार की आपूर्ति के लिये अप्राकृतिक रूप से पाले गए पशुओं द्वारा खा लिये जाते हैं।

वह कई प्रकार के प्राणी-समूहों के विनाश का कारण बनता है जो अपने प्राकृतिक भोजन के अभाव में विलुप्त जो जाते हैं।

वह प्रकृति के विभिन्न घटकों के साथ छेड़-छाड़ करके पारिस्थितिकीय संतुलन को बिगाड़ देता है।

मांसाहार हेतु पाले गए पालतू पशुओं को खिलाने के लिये वनस्पतिजन्य भोजन की अप्राकृतिक रूप से बढ़ी हुई मांग की आपूर्ति के लिये रासायनिक खाद, जंतुनाशक आदि के प्रयोग से फैला प्रदूषण भी पर्यावरण के लिये अत्यंत हानिकारक सिद्ध होता है।

मांसाहार प्रदान करने वाले कसाईखाने व कत्लखाने भी पर्यावरण में ऐसे अपशिष्ट विसर्जन करते हैं जो भूमि, सतही व भूमिगत जल संसाधनों व वायु को प्रदूषित करते हैं।

ये सब बातें हमें यह निष्कर्ष निकालनें के लिये बाध्य करती हैं कि मांसाहार पर्यावरण के लिये अत्यंत विनाशक है।

उपसंहार :-

जैन-धर्म की पर्यावरणीय चिंताओं पर इस लेख का समापन हम रियो डि जेनेरियो में हुवे अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन के घोषणापत्र से लिये गए इस उद्धरण से कर सकते हैं जो तत्संबंधित जैन-सिद्धान्त को बड़ी खूबी से प्रतिध्वनित करता है:-

"हम यह मानते हैं कि ब्रह्माण्ड पवित्र है क्योंकि इसमें हर चीज एक है। हम सभी प्रकार के जीवों की पुनीतता और उनके जीवन के अधिकार में विश्वास रखते हैं। हम मानवों के आपसी व उनके अन्य प्राणियों से संबंधों में शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्तों की पुष्टि करते हैं।"

"हम पारिस्थितिकीय विघटन को जीवन-तंत्र के प्रति हिंसक अतिक्रमण के रूप में देखते है। जैव-प्रोद्योगिकी जीवन-तंत्र को ही संकट में डालती है। हम सभी सरकारों, वैज्ञानिकों और उद्योगों से यह आग्रह करते हैं कि वे जैव-तकनीकों के अविवेकी प्रयोग के प्रति सावधान रहे।।"

डॉ. एन.पी. जैन के अनुसार :–

''जैन पारिस्थितिकी चेतना दैविक पावनतावाद तथा शोषणहीन विज्ञान व तकनीकी के सम्यक् मिश्रण पर आधारित है। धर्म और विज्ञान को एक-दूसरे की उपेक्षा करने तथा न करने के बजाय एक-दूसरे के साथ-साथ चलना चाहिये तथा मानव-जाति को ऐसा मार्ग दिखलाना चाहिये जिस पर चलकर वह आध्यात्मिकता के आलोक में अपनी धरती तथा उसके प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा कर सके। इस तरह जैन-धर्म के द्वारा दिखलाए गए वैज्ञानिकता, तार्किक वैचारिकता तथा व्यवहार की सम्यकता आज के वातावरण में, जब कि पारिस्थितिकीय चिंताएँ मुँह बाँए खड़ी हैं, बहुत ही प्रासंगिक हैं।''

''जैन-दर्शन मनुष्य जाति को धरती माँ की श्री, मनोहारिता व गरिमा और मर्यादा की रक्षा तथा उसकी प्राकृतिक उत्पादकता व जीवंतता की वृद्धि के प्रयासों के लिये प्रेरित व प्रोत्साहित करता है। अंततः सभी मानव, प्रकृति तथा अन्य प्राणी भी इस जैव-एकता के ही भाग हैं जो क्षैत्र और काल के अंतहीन प्रवाह में भी एकाकार हैं।''

जैन-धर्म की तो अनादिकाल से यही मान्यता रही है।

पर्यावरण सुरक्षाः प्राचीन भारतीय संदेश

– साध्वी ऋद्धिश्री

प्रस्तावना :–

मानव जीवमण्डल में एक विशेष स्थिति रखता है। वह पर्यावरण में जीता है, उसका उपयोग करता है और उसके अतिक्रमण में भी प्रमुख भूमिका निभाता है। वह जो श्वाँस लेता है, जल ग्रहण करता है, भोजन करता है आवास बनाता है या अन्य आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक क्रियायें करता है, वे सभी पर्यावरण द्वारा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में नियन्त्रित होती है। विभिन्न वैज्ञानिक एवं तकनीकी साधनों द्वारा उपयोग एवं उपभोग के क्रम में कब वह पर्यावरण को हानि पहुँचा देता है यह उसे तब ज्ञात होता है जब उसका विपरीत प्रभाव स्वयं उसपर होने लगता है। यद्यपि भारत में प्राचीनकाल से पर्यावरण के विभिन्न तत्वों जैसे सूर्य वर्षा, हवा, समुद्र, भूमि, वृक्ष पशु-पक्षी आदि को देवता के रूप में स्वीकार किया जाना, अप्रत्यक्षरूप से इनकी महत्ता को स्वीकार करना है। अथर्ववेद के 'पृथ्वीसूक्त' के एक विचारानुसार ''हे धरती माँ! जो कुछ भी मैं तुमसे लूँगा वह इतना ही होगा जिसे तू पुनः पैदा कर सके। तेरे मर्मस्थल पर या तेरी जीवन शक्ति पर कभी आघात नहीं करुँगां।'' ऊर्जा का अपरिमित स्रोत सूर्य की आराधना भारत में सूर्यः देवो भवः'' के रूप में की जाती है। वेदों में सूर्य को जगत् की आत्मा कहा है। वस्तुतः सूर्य सभी प्राणियों, वनस्पतियों तथा जीव-जन्तुओं में जीवन का संचार करता है तथा संपूर्ण पारिस्थितिकी चक्र को ऊर्जा प्रमुखता प्रदान कर नियन्त्रित करता है अतः उसको देवोपासना में महत्ता दी है। इसी तरह वायुदेव की कल्पना वायु के महत्व को प्रकट करती है जिसके संबंध में कहा गया है कि हे वायु! अपनी औषधी ले आओ और यहाँ के सब दोष दूर करो क्योंकि तुम ही सब औषधियों से युक्त हो। भारतीय संस्कृति में जल का महत्व सर्वाधिक है तथा कोई भी शुभकार्य जल के बिना सम्पन्न नहीं होता। हमारे यहाँ नदियों को जीवनदायिनी माना है तथा गंगा की पवित्रता का उल्लेख अनेक ग्रंथों में वर्णित है। जल को देवता एवं उसकी पूजा उपासना के पीछे उसकी उपयोगिता की भावना प्रमुख है। धरती पूजन की भारतीय परंपरा निसंदेह भूमि को सर्वोच्चता प्रदान करने के साथ-साथ जीवनदायिनी वसुधा को सुरक्षित संरक्षित रखने की प्रेरणा देती है। धरती को हमारे यहाँ माता माना है। वनस्पति की उपयोगिता को प्राचीनकाल से स्वीकारा जाता रहा है।

बहुमुखी उपयोगिता के कारण मत्स्य पुराण में यहाँ तक कहा है कि 10 पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है। इससे अधिक वनस्पति के महत्व को क्या कोई समझ पायेगा? वास्तव में प्राचीन भारत में पर्यावरण के प्रत्येक तत्व को महत्व दिया गया एवं उसकी उपयोगिता स्पष्ट की गई तथा उसके संरक्षण-संवर्धन हेतु उसे देवत्व प्रदान किया गया। निसंदेह उस युग में पर्यावरण के प्रति इतनी गहरी जागृति वर्तमान युग के लिए प्रेरणास्रोत है। कितना तार्किक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण जिसका निरुपण उसकाल में किया गया जब पर्यावरण की समस्या नहीं थी। किंतु यह सनातन-सत्य सत्यता की दौड़ में, विकास की ओट में तथा मानवीय संकीर्ण स्वार्थ लिप्सा में विस्मृत होता गया। आज सभी प्राकृतिक लाभों एवं पर्यावरणीय समस्याओं से भलीभाँति परिचित हैं लेकिन यह सब विचार-व्यवहार गोष्ठियों एवं लेखनकला तक ही सीमित है। संपूर्ण विश्व निम्नोक्त पर्यावरणीय समस्याओं का सामना कर रहा है–

(1) पेयजल संकट का सामना
(2) जलवायु में परिवर्तन
(3) वायु प्रदूषण का विस्तार एवं उसके दुष्प्रभाव
(4) जैव विविधता का संकट
(5) वन विनाश एवं हरीतिमा में कमी
(6) जलजनित रोगों का विस्तार
(7) ओजोन परत का क्षय और उसके कुप्रभाव
(8) रेडियोधर्मिता/विकिरण की समस्या
(9) महासागरीय प्रदूषण का विस्तार
(10) अनेक प्रकार की प्राकृतिक विपदाओं का जन्म जैसे- भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बीमारियाँ आदि।

उपरोक्त इन सभी समस्याओं का मूल है :-

भावात्मक मानसिक प्रदूषण -

आज सभी जलप्रदूषण, वायुप्रदूषण, मृदाप्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण से तो चिंतित परेशान है लेकिन भावात्मक मानसिक प्रदूषण की तरफ ध्यान ही नहीं है। इन सभी प्रदूषणों से निजात पाने के लिए संपूर्ण जीवन शैली का विश्लेषण आवश्यक है। इसलिए हमारे तीर्थंकर एवं ऋषियों ने संसार के स्वरूप का विवेचन विभिन्न द्रव्यों एवं पदार्थों के माध्यम से किया। उन्होंने केवल आत्मा-परमात्मा के स्वरूप

पर ही विचार नहीं किया अपितु मनुष्य के आस-पास के वातावरण का भी अध्ययन प्रस्तुत किया। प्रकृति और मनुष्य को गहराई से जानने/समझने का प्रयत्न ही पर्यावरण को सही ढंग से संरक्षित करने का आधार है। वस्तुतः संपूर्ण प्रकृति के साथ मनसा वचसा कर्मणा, कृत-कारित-अनुमोदनापूर्वक मधुर संबंधों का होना ही पर्यावरण संरक्षण है। समता, अहिंसा, संतोष, अपरिग्रह, शाकाहार का व्यवहार, आत्मआलोचना आदि जीवन मूल्यों के द्वारा ही स्थायी रूप से पर्यावरण को शुद्ध रखा जा सकता है।

(1) अहिंसा एवं पर्यावरण संरक्षण :-

बढ़ती हुई हिंसा, आतंकवाद, असीमित भोग विलास, सुविधावादी मनोवृत्ति, ओघोगीकरण, शहरीकरण, उपभोक्ता वादी संस्कृति, जहरीली गैसों का फैलाव, आणविक विस्फोट आदि के कारण भयंकर प्रदूषण बढ रहा है। वातावरण में प्रतिवर्ष एक करोड़ 45 लाख टन सल्फर डॉइ ऑक्साइड, 10टन सीसे का यौगिक, 75 टन फ्लोराइड और क्लोरीन गैस, 7 करोड़ टन अन्यान्य गैसे छोड़ी जाती हैं जिसके कारण वातावरण में रहने वाले अनंतानंत सूक्ष्म जीव एवं स्थूल जीवों का मरण होता है। इन जहरीली गैसों के दुष्परिणाम एक नहीं अनेक होते हैं। इन अनेक दुष्परिणामों से बचने के लिए लाखों वर्ष पहले ऋषियों ने उद्घोषणा की थी ''जीवाणं रक्खणं धम्मो''

''जीओ और जीने दो'', ''परस्परपग्रहो जीवाणां'' ये सूत्र पर्यावरण सुरक्षा के लिए अति उपयोगी है। षट्कायिक जीवों की रक्षा में धर्म की घोषणा करके भगवान महावीर ने पृथ्वी जल, अग्नि, वायु-वनस्पति, कीडे-मकोड़े- पशु-पक्षी एवं मानव इन सभी को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया।

(2) जैन जीवन शैली में पर्यावरण सुरक्षा :-

जैन जीवन शैली में पर्यावरण सुरक्षा आरम्भ से ही ऐसी धुली-मिली है कि उसका अलग से विचार करने की जरुरत ही नहीं। व्यक्ति अपने द्वारा किये गये पाप/अपराधों के प्रति स्वयं की निंदा आलोचना करता है और उन्हें आगे न करने की प्रतिज्ञा करता है। अगर उसने संकीर्ण स्वार्थवश, प्रमादवश, अज्ञानतावश, दयाहीनता के कारण हरियाली को उझाड दिया हो, जल का दोहन किया हो, वस्तु को उठाने रखने में प्रमाद किया हो, खाने-पीने, उठने, बैठने, बोलने, सोने चलने, मल-मूत्र त्याग करने आदि कार्यों में जीवों की विराधना हो गई हो तो उसके प्रति दुखी होता है और प्रायश्चित पश्चाताप करता है। इतनी सावधानी

का भाव व्यवहार, दया, करुणा, अहिंसा, विवेक का आचरण अगर प्रत्येक इंसान के जीवन में क्रियान्वित हो जाये तो पर्यावरण प्रदूषण की विकराल समस्या पर सहजता से रोक लग सकती है एवं संसार के समस्त प्राणी सुखी बन सकते हैं।

(3) इच्छा परिमाण (संतोषवृत्ति) से पर्यावरण संरक्षण :-

मितव्ययता जैनदर्शन के व्यवहारिक पहलू की रीढ है। मितव्ययता से तात्पर्य है- आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कम से कम वस्तुओं का उपभोग करना। इस मितव्ययता की बात लाखों वर्ष पहले हमारे प्रज्ञापुरुषों ने षटलेश्या सिद्धान्त, इच्छापरिमाणव्रत, अनर्थ दण्ड त्याग व्रत, परिग्रह परिमाणव्रत सूत्रों के माध्यम से कही थी। अगर दातून के लिए एक टहनी की आवश्यकता है तो बड़ी मोटी टहनी या डाली तोडने पर क्या वनस्पतिकायिक जीवों के प्रति अतिक्रमण, अन्याय, हिंसा नहीं है? स्नान करने के लिए या अन्यान्य कार्य करने के लिए अगर एक बाल्टी पानी पर्याप्त है, लेकिन फिर भी नल खोलकर पानी को व्यर्थ बहाना क्या जलप्रदूषण नहीं है? पृष्ठ पर दो लाईने लिखकर पूरा पृष्ठ खाली छोड़ देते हैं क्या यह प्रदूषण को नहीं बढा रहा है। क्योंकि कागज को बनाने में कितने कारखाने लगाने पड़े, कितने जंगलों को काटना पड़ा, कितना समय-श्रम शक्ति को लगाना पड़ा? इन सभी छोटी-छोटी बातों की तरफ हमारा ध्यान कभी भी आकर्षित नहीं हो पाता है। इन सभी बातों को ध्यान में रखने के लिए एवं संयमित, मितव्ययी जीवन जीने के लिए भ. महावीर ने कहा कि सभी चेतन अचेतन पदार्थों की अपनी मौलिक/स्वतन्त्र सत्ता है। सभी का अपना-अपना अस्तित्व है। अगर हम ब्रह्माण्ड के किसी चेतन-अचेतन, छोटे-बड़े घटक के प्रति छेडछाड, अतिक्रमण अत्याचार, अनाचार करते हैं तो संपूर्ण ब्रह्माण्ड के घटक प्रभावित होते हैं। भ. महावीर ने कहा था कि छोटे से छोटे जीव के अस्तित्व को भी स्वीकार करो। जो दूसरें के अस्तित्व को स्वीकार करता है वह अपने अस्तित्व को भी स्वीकार करता है। जब ये सूत्र हमारे जीवन में रूपान्तरित हो जायेगे फिर हम ईंट के एक टुकडे, पानी की एक बूँद को व्यर्थ में नष्ट नहीं करेंगे। अनावश्यक प्रवृत्तियों को करना ही तो पर्यावरण प्रदूषण है। यदि जीवन में प्रवृत्ति-निवृत्ति का संतुलन बन जाये तो मानवीय जीवन अनेक बुराईयों व दुःखों से निजात पा सकता है।

(4) संयमित जीवन से पर्यावरण संरक्षण :-

भोगवृत्ति को नियन्त्रित करने और सभी प्राणियों के प्रति दया, करुणा, परोपकार, अहिंसा मैत्री का व्यवहार-विचार बनाये रखने के लिए अणुव्रत, महाव्रत,

समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमण, तप-त्याग, व्रत नियमों की व्यवस्था है। 5 अणुव्रतों में अहिंसा के माध्यम से प्राणीमात्र के प्रति मैत्री, दया का भाव, सत्य द्वारा कथनी-करनी में एक रूपता, अस्तेय द्वारा शोषण का विरोध और दूसरे के अधिकारों का रक्षण, ब्रह्मचर्य द्वारा आत्म संयम और शक्ति संचय तथा अपरिग्रह द्वारा ममत्व विसर्जन और सेवा की भावना का अभ्यास किया जाता है। तीन गुणव्रतों में भोगवृत्ति को सीमित करने के लिए ही अन्य दिशाओं में स्थित देशों पर अधिकार न करने, पदार्थों के उपभोग-परिभोग में मर्यादा करने तथा निष्प्रयोजन कोई भी कार्य न करने का नियम ग्रहण किया जाता है। इन तीन गुणव्रतों को संवर्धित-संरक्षित-पुष्ट करने के लिए चार शिक्षाव्रत हैं। जिनके द्वारा साम्यभाव धारण करने का अभ्यास किया जाता है, दूसरों के अधिकारों की रक्षा की जाती है, आत्मिक गुणों का पोषण किया जाता है तथा जो कुछ प्राप्य है उसका समाज के अन्य लोगों के लिए निस्वार्थ भाव से संविभाग किया जाता है।

जैन संतों की दैनिक जीवन की क्रियाओं का पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान है। जैन संत जीवनभर पैदल चलते हैं। उनकी यह पद यात्रा प्रकृति-पर्यावरण के साथ सीधा संबंध स्थापित करती है। चातुर्मास में जैनसंत एक स्थान पर रूककर प्रकृति के विकास का स्वागत करते हैं। उनका दृष्टिकोण रहता है कि वर्षा ऋतु में वनस्पति पानी, कीटपतंग सभी अपने विकास पर है, इस समय कीड़े-मकोड़े भी अपनी विश्वयात्रा पर निकलते हैं उन सभी के संचरण में, विकास में वह अपना गमनागमन करके उन्हें बाधा न पहुँचाये। मूलाचार, उत्तराध्ययन आदि ग्रंथों में वर्णन है कि साधक दिन के 4 भाँगों में प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, द्वितीय में ध्यान, तृतीय में आहारचर्या, चतुर्थ में स्वाध्याय करे। इसी प्रकार रात्रि के भी चार विभाग किये गये है जिनमें स्वाध्याय, ध्यान, शयन, स्वाध्याय करने का विधान है। इस स्वाध्याय-ध्यान के द्वारा अपनी व संपूर्ण ब्रह्माण्ड की प्रकृति का चिंतन मनन-निरीक्षण-परीक्षण किया जाता है। षट आवश्यक कर्तव्यों का संबंध सासांरिक विषय वासनाओं को त्यागने एवं इच्छाओं के निरोध के संकल्प से है। आवश्यकताओं को सीमित करने से एवं विषय वासनाओं के त्याग से हिंसा, झूठ, कुशील, परिग्रह इत्यादि दुष्प्रवृतियों से सहज में बचा जा सकता है। सात्विक सादगीमय जीवनशैली से सामाजिक वातावरण शुद्ध बना रहता है तथा प्रगति विरोधक अंधविश्वासों और रूढियों का निर्माण व प्रचलन रुकता है।

सामायिक, प्रतिक्रमण प्रतिलेखना, सल्लेखना, समिति, गुप्ति, आहारचर्या,

उपकरणों का उपयोग, मलमूत्र त्याग आदि क्रियाओं के माध्यम से साधक किसी भी तरह, किसी को भी, कभी भी बाधा न पहुँचाते हुए एवं अंतरंग-बहिरंग समस्त वैभाविक विकारों को नष्ट करते हुए पर्यावरण संरक्षण में अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं। जैनधर्म में श्रमणचर्या व श्रावकचर्या द्वारा पर्यावरण को सुरक्षित-संवर्धित रखने हेतु कदम-कदम पर प्रत्येक क्रिया के साथ संयम विवेक जुडा हुआ है। अगर इन नियम, कानूनों को प्रत्येक इंसान स्वेच्छा से अपने जीवन में मूर्त रुप दे दे तो पर्यावरण प्रदूषण की समस्याये ही नहीं अपितु विश्व में व्याप्त अन्यान्य समस्याओं का समाधान स्वयमेव हो जायेगा।

निष्कर्ष :–

प्रस्तुत आलेख में निहित सार यही है कि मानसिक/भावात्मक प्रदूषण से वर्तमान मानव सभ्यता एवं प्रकृति व्यापक व गहन रुप से प्रभावित हुई है। मानव जीवन की सरलता, सज्जनता, निष्कपटता, परदुख कातरता, स्वावलम्बन, कर्तव्य निष्ठा, श्रमनिष्ठा, परस्पर सहयोग, प्राणीमात्र के प्रति दया, करुणा, सहिष्णुता आदि ऐसे मानवीय गुण हैं जो मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में श्रेष्ठता, ज्येष्ठता प्रदान करते हैं तथा जिनके संतुलन से प्रकृति व्यवस्था संतुलित एवं मर्यादित, निर्विहन चलती रहती है। लेकिन जब इन मानवीय गुणों का ह्रास होता है या इन गुणों के प्रतिपक्षी मनोभाव मानव जीवन में घुसपैठ कर जाते हैं तब उससे न केवल व्यक्ति ही अपितु समाज, राष्ट, विश्व दुःखी अशांत संत्रस्त, क्लान्त हो जाता है। जैसा कि वर्तमान परिवेश में मनोविकृत सामाजिक, राष्ट्रीय, वैश्विक अव्यवस्था एवं प्राकृतिक असंतुलन के दुष्परिणामों को हम सभी प्रत्यक्षतः अनुभूत कर रहे हैं। वस्तुतः इन सभी विकृतियों के लिए मानव जगत् का मानसिक/भावात्मक प्रदूषण ही उत्तरदायी है।

पर्यावरण संरक्षण एवं शुद्धि हेतु यह आवश्यक है कि मानवीय मानसिक प्रदूषण को संयमित/नियन्त्रित/संतुलित करके उसे जनोपयोगी बनाया जाये। संपूर्ण भूमण्डल में अमन-चैन, सुख-शांति, समृद्धि का साम्राज्य विनिर्मित हो ऐसी शुभाषा, शुभेच्छा के साथ मैं उन सभी सुधी लेखकों के प्रति अपना आभार ज्ञापित करुँगी जिनका सहयोग-सहकार मैंने इस आलेख के लिए लिया है।

आचार्य श्री के ग्रन्थ का विमोचन करते हुए श्री अमृतलालजी जैन साथ में है (बायें से) सर्व श्री प्रभात कुमार जैन, हनुमानसिंह बर्डिया, डॉ. नारायण लाल कछारा, डॉ. प्रेम सुमन जैन

आचार्य श्री कनकनंदी जी ससंघ के सानिध्य में वर्ष 2007 में प्रस्तावित जैन एकता सम्मेलन पर चर्चा करते उदयपुर के कार्यकर्तागण

भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति महान्

हमारे महापुरुष महान् होने के कारण इनके द्वारा शोध-बोध, प्रचार-प्रसार किया गया आध्यात्मिक, ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति, संस्कार, सभ्यता महान होना स्वाभाविक है। क्योंकि महापुरुषों के भाव, वचन, व्यवहार आदि भी महान् ही होते हैं। इसलिए भारत में भौतिकता में आध्यात्मिकता है, अर्थ में भी परमार्थ निहित है, व्यक्ति में समाज समाहित है तो समाज में व्यक्ति समाहित है, योग भी त्याग से सहित है तो युद्ध भी धर्म से युक्त है। इसलिए भारत में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी चार प्रकार के पुरुषार्थ है। राजनीति में भी धर्म से युक्त अर्थ एवं नीति से युक्त राजनीति होती है। इसलिए प्राचीन राजनीति शास्त्र में कहा है - ''धर्मार्थकाम मूलानि राज्याय नमः'' अर्थात् राज्य का मूल धर्म से युक्त अर्थ स्वरूप है। इसलिए भारतीय आध्यात्मिक (धर्म) और विज्ञान से लेकर कला, भाषा पर्व, रीति-रिवाज, परम्परा परस्पर अनुसृत है, संयुक्त है, एक दूसरे से प्रभावित है। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ द्वारा प्राप्त खाद, पानी सम्पूर्ण शाखा, प्रशाखा, फूल-पत्ती और फल आदि में व्याप्त होता है, इसे पोषक तत्व प्रदान करता है उसी प्रकार भारतीय सम्पूर्ण कार्य आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है, ऊर्जावान है। इसलिए भारत को आध्यात्मिक प्रधान (कर्म प्रधान) देश कहा गया है। भारतीय संस्कृति में केवल मनुष्य के साथ ही सद्व्यवहार करने का पाठ नहीं पढ़ाया जाता है परन्तु जलकायिक, पृथ्वीकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, कीट, पतंग, पशु-पक्षी आदि सम्पूर्ण चराचर के जीवों के साथ-साथ प्राकृतिक शक्ति आदि के साथ सद्व्यवहार करने का पाठ पढ़ाया जाता है। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक जीव को भगवान् का स्वरूरूप माना जाता है और सर्व जीवों के कल्याण की भावना की जाती है।

- आचार्य कनकनंदी